राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक—डॉ० पद्मधर पाठक

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ४०

कवि हेमरतन रचित

गोरा बादिल चरित्र

(शोधपूर्ण पर्यालोचन सहित)

सम्पादक

पुरातत्त्वाचार्य मुनि श्री जिनविजय

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

१९९० ई०

द्वितीयावृत्ति ५००

मूल्य ३२.००

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक—डॉ० पद्मधर पाठक

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ४०

कवि हेमरतन रचित

गोरा बादिल चरित्र

(शोधपूर्ण पर्यालोचन सहित)

सम्पादक

पुरातत्त्वाचार्य मुनि श्री जिनविजय

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

१९९० ई०

द्वितीयावृत्ति ५००　　　　मूल्य ३२.००

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थानराज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिलभारतीय तथा विशेषतः राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषानिबद्ध
विविधवाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट-ग्रन्थावली

प्रधान-सम्पादक

डॉ० पद्मधर पाठक

निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

ग्रन्थाङ्क ४०

कवि हेमरतन चरित

गोरा बादिल चरित्र

(शोधपूर्ण पर्यालोचन सहित)

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

१९९० ई०

प्रधान सम्पादकीय

जगत को मिथ्या मानकर एवं रूढ़िगत वन्धनों की उपेक्षा कर श्रीकृष्ण में तल्लीन भक्त कवयित्री मीरां, दूसरी ओर सांसारिक मान-मर्यादाओं एवं भारतीय नारी के पातिव्रत्य धर्म की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाली पद्मिनी अथवा पद्मावती दोनों की ही लीला-स्थली चित्तौड़गढ़ रही है। एक विलक्षण संयोग यह भी है कि दोनों की ऐतिहासिकता पर आज तक प्रश्न चिह्न लगा हुआ है।

अमीर खुसरो जैसे चश्मदीद कहीं भी खुलकर पद्मिनी विषयक किसी घटना का उल्लेख नहीं करते हैं। जायसी के पद्मावत में अवश्य पैर रखने को एक धरातल मिलता है किन्तु इस काव्यात्मक कथा का भौगोलिक पक्ष नई उलझनें पैदा कर देता है। परिणामस्वरूप अधिकांश लोगों ने पद्मिनी को लेकर व्यक्तिगत भावावेग को तर्क-कुतर्क के बीच से निकालने के प्रयत्न किए हैं।

प्रतिष्ठान के इस प्रकाशन से शोधार्थियों एवं इतिहासकारों ने पर्याप्त लाभ उठाते हुए 'गोराबादिल चरित्र' के पुनर्मुद्रण पर हमें विवश कर दिया है। पुस्तक का नया संस्करण उसकी उपादेयता और हमारे प्रकाशनों की सफलता का द्योतक है।

पुस्तक की शुद्ध और शीघ्र छपाई के लिये भारत प्रेस, जोधपुर के हम आभारी हैं। प्रूफ आदि के संशोधन कार्य में विभाग के श्री ओमप्रकाश टांक, परिरक्षण सहायक ने प्रशंसनीय तत्परता दिखायी है।

डॉ. पद्मधर पाठक
निदेशक

दिनांक 19-11-90

प्रधान-सम्पादकीय वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रन्थ के दो भाग कहे जा सकते हैं, एक काव्य और दूसरा इतिहास। इसका काव्य-भाग पहले भी डॉ० उदयसिंह भटनागर द्वारा सम्पादित होकर छप चुका है, परन्तु प्रतिष्ठान से उसको पुनः प्रकाशित करने का कारण यह है कि प्रस्तुत प्रकाशन का आधार स्वयं ग्रन्थकर्ता द्वारा लिखित मूल प्रति है। परन्तु इस से भी अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ का वह इतिहास-भाग है जो प्रतिष्ठान से भूतपूर्व सम्मान्य संचालक श्री मुनि जिनविजयजी द्वारा ग्रन्थ की भूमिका-स्वरूप प्रातःस्मरणीया महाराणी पद्मिनी तथा उनके पतिदेव रतनसिंह की ऐतिहासिकता को प्रमाणित करने के लिये प्रस्तुत किया गया है। श्री मुनि जिनविजयजी की यह ऐसी अभूतपूर्व कृति है जिसमें उनके स्वदेशाभिमान, इतिहास-मर्मज्ञता, शोधप्रवृत्ति, सूक्ष्मदृष्टि तथा समीक्षण-पटुता का अद्भुत परिचय तो मिलता ही है, परन्तु इसके साथ ही इस विद्वान् लेखक ने भारतीय इतिहास के एक अत्यन्त गौरवपूर्ण चरित को विदेशी इतिहासकारों तथा उनके भारतीय शिष्यों द्वारा विस्मृत अथवा उपेक्षित किये जाने के प्रयत्न से बचाने के लियेजो सफल प्रयास किया है, उससे इस देश के इतिहास को एक अपूर्व देन प्राप्त हुई है। श्री मुनि जिनविजयजी, ८० पृष्ठ की इस बहुमूल्य सामग्री के लिये, हमारी हार्दिक बधाई के पात्र हैं। यद्यपि इस प्रसंग में संभवतः वे और भी कुछ लिखना चाहते थे, परन्तु मुझे खेद है कि मेरे निरन्तर प्रयत्न करने पर भी मैं पिछले ६-७ महिनों में इस दिशा में उनका अमूल्य सहयोग प्राप्त करने में सफल नहीं हो सका। साथ ही उनकी इस नवीन और अत्यन्त महत्वपूर्ण खोज को सुविज्ञ इतिहासकारों एवं स्वदेशाभिमानी लेखकों के सामने शीघ्रातिशीघ्र पहुंचाना प्रतिष्ठान का परम कर्त्तव्य समझ कर, मैं इस अवधि में इस बात का हार्दिक दुःख अनुभव कर रहा था कि इस सामग्री का मुद्रण २२-२-६७ में समाप्त हो जाने पर भी प्रतिष्ठान इस को प्रकाश में न लाने का जघन्य अपराध करता रहा है। इसीलिये, श्री मुनिजी महाराज से इस विषय में और अधिक लिखने की आग्रहपूर्वक प्रार्थना करते हुए भी, मैं यह ग्रन्थ इसी रूप में प्रकाशित करना अपना पवित्र कर्त्तव्य मानता हूँ।

अन्त में मैं श्री मुनि जिनविजयजी को उनकी इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक रचना के लिये, और उनसे भी अधिक बनेड़ा-निवासी बेरिस्टर श्री रविशंकरजी देराश्री

तथा उनके सम्वन्धी प्रो. श्री सत्यदेव देराश्री को हृदय के गहन तल से धन्यवाद अर्पित करता हूँ जिनके माध्यम से प्रतिष्ठान को गोरा बादल पद्मिणी चउपई की वह मूल प्रति प्राप्त हुई जो श्रद्धेय लेखक के लिये एक अभूतपूर्व प्रेरणा-स्रोत बनी ।

इस वक्तव्य को समाप्त करने से पूर्व गोरा बादल पद्मिणी चउपई के यशस्वी लेखक हेमरत्न के विषय में इतना कह देना आवश्यक है कि वे संस्कृत के भी अच्छे लेखक थे और उनके द्वारा प्रणीत एक प्रश्नोत्तर-काव्य 'भावप्रदीप' प्रतिष्ठान में संगृहीत है और यदि यह संभव हो सका तो इसका प्रकाशन निकट भविष्य में किया जायेगा ।

८-२-६८
जोधपुर

फतहसिंह

'गोरा बादल पदमिणी चउपई' विषयक एक पर्यालोचन

(ले० मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य)

चित्तौड़ की रानी पद्मिनी अथवा पद्मावती भारत के जनमानस में एक विशिष्ट वीरांगना और सती नारी के रूप में शाश्वत स्थान प्राप्त कर चुकी है। विशाल भारत की विभिन्न देश-भाषाओं में इसके विषय का विपुल साहित्य निर्मित हो चुका है। कथा, कहानी, नाटक, उपन्यास एवं काव्यों के रूप में इसकी कथा भारत के कोने-कोने में बहुत व्यापक और हृदयंगम बनी हुई है।

भारत के ऐतिहासिक युग की यह एक बड़ी रूपवती, बुद्धिमती और श्रेष्ठ सती नारी है। यह रामायण की सती सीता और महाभारत की द्रौपदी का सम्मिश्रित अवतार-रूप आर्य नारी का अद्भुत प्रतीक स्वरूप थी।

'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृत्तः' यह भगवद्गीता की उक्ति बताती है कि काल सदा लोकवृत्त का क्षय करने में प्रवृत्त रहता है। इसी काल के प्रभाव से पद्मिनी का तथ्यपूर्ण जीवनवृत्त भी क्षय की दशा को प्राप्त हो चुका है; अतः इस विभूतिमती आर्य नारी के विशुद्ध एवं संपूर्ण जीवनवृत्त के तथ्यभूत रूप में उपलब्ध होने की आशा रखना व्यर्थ है।

भारत के प्राचीन इतिहास की प्रदर्शक साधन-सामग्री बहुत कम परिमाण में उपलब्ध है। इस कारण भारत का व्यापक इतिहास अन्धकार-ग्रस्त है अथवा विलुप्तप्रायः है ऐसा मानना पड़ता है। हमारे पूर्वजों की विचारधारा भी इसका एक मुख्य कारण है। संसार के अनेकानेक प्राचीन मानव-समाज के विज्ञजनों ने अपने पूर्वजों के भौतिक जीवन को जिस तरह महत्व की वस्तु माना वैसे भारतीय विज्ञों ने नहीं माना। भारतीय विज्ञ मनुष्यों के जीवन का मुख्य लक्ष्य कोई पारलौकिक तत्त्व था। इसलिये जिस विशिष्ट व्यक्ति के जीवन में कोई पारलौकिक तत्त्व प्रेरणा का आधार रहा उसके विषय में तो उन्होंने कुछ अर्थ-वाहक शब्द-संकलन के रूप में उक्ति-विशेषों को ग्रन्थीबद्ध किया; जीवन के बाकी के स्वरूप को उन्होंने उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा। अन्यान्य मानव-समूहों में पारलौकिक तत्त्व को महत्व देने वाली ऐसी कोई विशिष्ट विचारधारा नहीं थी; उनके जीवन में केवल भौतिक सुख की प्राप्ति का ही मुख्य महत्व रहा।

इसलिये जिस किसी व्यक्ति ने विशेष रूप से भौतिक-सुख के साधन जुटाने में जो कुछ विशिष्ट प्रयत्न किया उसको उन समाजों के विज्ञ मनुष्यों ने अपनी वाणी में संकलित रूप में शब्द-बद्ध करने के प्रयत्न किये। अतः अन्यान्य जातीय मानव समाजों के भूत-कालीन इतिहास के साधनों की जितनी विशेष सामग्री उपलब्ध होती है उतनी हमारे देश के इतिहास की नहीं। इसलिये उस प्राक् ऐतिहासिक काल की बात तो दूर रही, भारतीय इतिहास का जिसे सुवर्ण-युग कहा जाता है उस मौर्य और गुप्तकाल के बारे में भी हमारे यहां कोई ऐसा विशिष्ट साहित्य उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार जब बड़े-बड़े सम्राटों के जीवन के विषय में हमें स्वल्पतर भी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं है तो फिर पद्मिनी जैसी एक छोटे से राज्य के शक्तिहीन राजा की रानी के बारे में विशेष ऐतिहासिक तथ्य बताने वाली सामग्री की उपलब्धि की आशा रखना निरर्थक ही है; तथापि पद्मिनी एक बड़ी भाग्यवती रानी है जिसके विषय में तथ्यातथ्य-विमिश्रित कुछ इतिहासाभासी साहित्यिक कृतियां उपलब्ध हो रही हैं।

हेमरत्न कवि कृत प्रस्तुत 'गोरा बादल पदमिणी चउपई', पद्मिनी-विषयक इन्हीं कृतियों में से एक विशिष्ट राजस्थानी भाषा की रचना है। यों तो अवधी भाषा में मुसलमान सूफी कवि जायसी ने इसी पद्मिनी रानी की जीवन-कथा कहने वाली पदमावत नाम से एक बहुत ही सुन्दर और प्रौढ़-काव्यात्मक कृति की रचना की है जो प्रस्तुत 'पदमिणी चउपई' से कोई आधी शताब्दी पूर्व ही बनी है। जायसी की यह रचना हिन्दी-भाषा-साहित्य में एक बहुत ही महत्त्व की और उत्कृष्ट कोटि की रचना मानी जाती है और इस पर, अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार के व्याख्यात्मक विवेचनात्मक और आलोचनात्मक ग्रन्थ, प्रबन्ध, निबन्धादि लिखे हैं। जायसी ने इस रचना में पद्मिनी का जो जीवनवृत्त आलेखित किया है वह केवल विशुद्ध कथा-वर्णन स्वरूप नहीं है, परन्तु आलंकारिक भाषा में महाकाव्य-पद्धति का है। जायसी कवि सूफी विचारधारा का अनुयायी था। उसका लक्ष्य हिन्दू जनता में अत्यन्त लोकप्रिय और श्रद्धास्पद सती पद्मिनी की आबाल-गोपाल प्रसिद्ध लोक-कथा को सूफी विचारों और कल्पनाओं के रंगों से रंजित कर पढ़ने-सुनने वालों को अपनी साम्प्रदायिक विचारधारा की तरफ आकृष्ट करने का था।

पद्मिनी की कथा के अत्यन्त लोकप्रिय होने के अनेक कारण थे। वह अत्यन्त रूपवती और गुणवती श्रेष्ठ हिन्दू नारी थी। भारत में प्राचीनकाल से जिसका विशिष्ट ऐतिहासिक और भौगोलिक महत्व रहा है वैसे विख्यात और समृद्धि तथा संस्कृति-परिपूर्ण चित्तौड़ दुर्ग उसकी राजधानी थी। भारत के प्राचीनतम

उत्तम राजवंशों में से एक बहुत ही गौरवशाली गुहिलोत राजवंश की वह राजरानी थी। भारत के इतिहास में प्रलयकाल-समान दिल्ली के महाम्लेच्छ दुष्टतम मुसलमान सुलतान अलाउद्दीन की उस पर क्रूर दृष्टि पड़ी थी। वह विषयलोलुप, मदान्ध, धर्म-ध्वंसक, हत्यारा, तुर्क मुसलमान भारत की हिन्दू जाति की उस सर्वश्रेष्ठ नारी का सतीत्व नष्ट कर उसे अपनी गुलाम बन्दिनी बनाना चाहता था; और, ऐसा करके वह हिन्दू जाति के धार्मिक और सांस्कृतिक हृदयों का विदारण कर, उनको अपने कब्रिस्तानों में दफनाना चाहता था। उसने इसके पूर्व ही इसी उद्देश्य से गुजरात के महासमृद्ध साम्राज्य को ध्वस्त कर दिया था, महाराष्ट्र के देवगिरि के महाराज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था, राजस्थान के उत्तर पूर्वी सीमा के प्रबल रक्षक रणथम्भोर दुर्ग को भस्मसात् कर दिया था; वह हत्यारा अपने चाचा जलालुद्दीन की निर्मम हत्या करा कर उसके दिल्ली के सिंहासन को कब्जे कर[1], सारे भारत के राष्ट्रीय तीर्थ-समान चित्तौड़ दुर्ग को धराशायी कर देना चाहता था और उसके गर्वोन्नत राजवंश का विच्छेद कर उस युग की पद्मिनी नारी के पवित्र शील को भ्रष्ट कर अपनी अधमतम पाशवीवृत्ति को परितुष्ट करना चाहता था। अलाउद्दीन बहुत महत्वाकांक्षी, विश्वासघाती और अत्यन्त क्रूर प्रकृति का लड़ाकू योद्धा था। वह बहुत ही धनलोलुप और अधम एवं लम्पट था। उसकी पहली बीबी स्वयं उसके प्रतिपालक चाचा जलालुद्दीन सुलतान की लड़की थी पर वह अपने दुश्चरित्र के कारण बीबी का दुश्मन-सा बना हुआ था। उसने अपनी लम्पटता के पोषण के निमित्त अनेक मुस्लिम और हिन्दू स्त्रियों के जीवन को भ्रष्ट किया था और जिस किसी हिन्दू राज्य की संपत्ति को वह हस्तगत करता था उसके साथ उन राजवंशीय सुन्दर स्त्रियों के सतीत्व को भी नष्ट करता था। इसी कारण उसने देवगिरि के यादव राजा रामचन्द्र की संपत्ति को लूटने के साथ उसकी सुन्दर कन्या छिताई को भी भ्रष्ट किया। गुजरात के राजा कर्ण की रानी कमला और उसकी पुत्री देवलदेवी की भी उसने क्रूर दुर्दशा की। रणथंभोर के चाहमान वीर हमीर की पुत्री को भी उसने उसी प्रकार अपनी बन्दिनी बना कर उसे अपने नरकागारसम हरम में डालना चाहा था, परन्तु वीर हमीर ने उसकी दुष्ट कामना को विफल करने के निमित्त स्वयं अपनी रानियों के साथ पुत्री को पहले ही अग्निदेव के शरण कर फिर, युद्ध में अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। इसी प्रकार की अधम आकांक्षा के वश होकर उसने चित्तौड़ पर भी आक्रमण किया था।

---

१ अलाउद्दीन की कृतघ्नता और दुष्टता के लिए ये सभी कटु-विशेषण मुसलमान इतिहासकार बर्नी द्वारा दिए गए हैं—देखिए 'खलजी कालीन भारत', पृ० ३७-३८; ४०।

उसने सोचा होगा कि चित्तौड़ एक छोटा-सा राज्य है, उसकी कोई बड़ी सैन्य-शक्ति नहीं है, वह दुर्ग सहज ही कब्जे में आ जायगा और आसानी से भारत की उस श्रेष्ठ नारी को अपनी बन्दिनी बना कर उसे अपने घृणित हरम में दाखिल कर अपनी क्रूर पाशवी-वृत्ति को संतुष्ट कर सकेगा। पर चित्तौड़ के मुट्ठी-भर वीरों ने उसके आक्रमण का डट कर सामना किया, महीनों तक उसे वहां पड़ा रहना पड़ा और अपने सैंकड़ों चुनिंदा सैनिकों के सिर कटवाने पड़े।[1] चित्तौड़ के वीरों की संख्या जब लड़ते-लड़ते समाप्त होने लगी तो फिर पद्मिनी ने अपने वीरों को आखिरी केशरिया वेष पहना कर, उनके मस्तकों में अक्षत-चन्दन के तिलक लगा कर उन्हें विदा किया और स्वयं अपने समस्त नारी-वर्ग को साथ लेकर, पद्मिनी-तलाव में स्नान कर, भक्ति-पूर्वक भगवान् शिव की पूजा-अर्चना कर मंगलमय गीत गाती हुई अग्नि-शय्या पर जा बैठी। क्षण भर में उसका और उसकी सब सहगामिनी सती-नारियों के सुवर्णमय शरीर राख के ढ़ेर में परिणत हो गये। जिस तरह किले पर अग्नि की ज्वाला ठंडी हो गई उसी तरह उधर नीचे रण-भूमि में वीरों की रक्तधारा भी बहती बन्द हो गई। किले के दरवाजे खुले पड़े थे और राजघराने के महल सूने हो गये थे। अलाउद्दीन, जब किले पर पहुँचा तो, अपने दरबारी कवि अमीर खुसरो के सामने जो उसके साथ था, किसी 'हुद हुद' के लिए चिल्ला रहा था। पर उसे वहां कोई 'हुद हुद' नहीं दिखाई दिया। केवल राख के ढेर में से राख की बारीक बारीक भुरकी उड़-उड़ कर उसकी क्रूर आंखों में पड़ रही थी जिसके कारण वह अपना काला मुँह ढांकता हुआ और घृणित आंखें मलता हुआ हताश होकर खाली हाथ वापस दिल्ली को लौटा।

पद्मिनी की जीवन-कथा का बस इतना ही सारभूत तथ्य-वृत्त है और यह वृत्त इतना उदात्त और भावोत्तेजक है कि प्रत्येक हिन्दू सन्तान इसे सुनकर रोमांचित होती रही है। स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी इस कथा को सुन कर भाव-विभोर होते रहे हैं। हिन्दू जाति के अस्तित्व को नष्ट करने वाले उस प्रलयकाल के समान दुर्दैवी युग में ऐसी एक आदर्श आर्य-नारी हुई जिसने अपने सतीत्व और जातीय गौरव की रक्षा के निमित्त इस प्रकार प्राणों की आहुति दे दी कि जिसके कारण संसार में आज तक हिन्दू जाति के गरिमाशाली गौरव की दिव्यज्योति का प्रतापी प्रकाश प्रदीप्त है।

पद्मिनी की कथा की ऐसी विशिष्टता से आकृष्ट होकर ही कवि जायसी ने

१ खलजी कालीन भारत, पृ० ७६।

इसको अपने कथा-काव्य का मुख्य विषय बनाया और इसमें वह यथेष्ट सफल भी रहा। उसकी यह रचना, कथा की मुख्य नायिका की तरह ही अच्छी लोकप्रिय बन गई। जायसी की यह रचना पुरानी हिन्दी की अवधी बोली में है, इससे इसका प्रचार उत्तर भारत में ही अधिक रहा। इसी बोली में गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी प्रसिद्ध रामायण की रचना की; परन्तु, रामायण का विषय एक तो बहु-विश्रुत और व्यापक है, दूसरा गोस्वामीजी संस्कृत भाषा के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे, इसलिए उनकी रचना बहुत ही परिस्कृत और संस्कृत भाषा की शैली तथा भावों से ओतप्रोत है। जायसी स्वयं मुसलिम कवि था, उसके संस्कार और भाव इस्लामी संस्कृति में ढले थे और वह फारसी-अरबी भाषा के साहित्य की परम्परा में पला था, इसलिए उसकी रचना में उसी के अनुरूप भावाभिव्यक्ति भी हुई है। तथापि कवि जायसी हिन्दुओं की विचार-प्रणाली, भावाभिव्यक्ति और साहित्यिक शैली से भी अच्छी तरह परिचित था, इसलिए उसकी रचना में विशेष भेदभाव दृष्टिगोचर नहीं होता और इसीलिए वह हिन्दुओं के लिए भी वैसी ही सुग्राह्य और समादरणीय रचना हो गई।

जायसी के 'पदमावत' की तरह राजस्थान, गुजरात, मालवा जैसे पश्चिम-भारत के प्रदेशों में हेमरत्न कवि की प्रस्तुत रचना विशेष प्रसिद्ध रही। इसका रचयिता एक विद्वान् जैन यति है। इसकी भाषा सुपरिष्कृत राजस्थानी है, पर वह उस शैली में रची गई है जो मारवाड़, मेवाड़, मालवा और गुजरात के प्रदेशों में समान रूप से व्यवहृत होती थी। जैसा कि रचनाकार ने स्वयं सूचित किया है, इसकी रचना सादड़ी नगर में की गई है, जो मारवाड़ और मेवाड़ के सन्धिस्थल में अवस्थित है। इस रचना के मुख्य प्रेरक थे मेवाड़ के महाराणा प्रताप के अत्यंत विश्वस्त राजभक्त और देशभक्त, राजस्थानीय महाजनों के मुकुट-समान भामाशाह के भाई ताराचंद। सादड़ी नगर उस समय मेवाड़ राज्य की दक्षिण पश्चिमी सीमा का केन्द्रस्थान था। ताराचंद वहां पर महाराणा प्रताप के शासन का एक विशिष्ट स्थानिक अधिकारी था। कवि हेमरत्न भामाशाह और ताराचंद के धर्म-गुरुओं के शिष्य-समूह में से एक प्रमुख व्यक्ति थे। हेमरत्न अच्छे कवि थे और जैन परम्परागत अनेक धर्म-कथाओं को उन्होंने अपनी देश-भाषा में ग्रथित किया था। इन कथाओं को जैन विद्वान् यति अपने धर्मोपदेश के समय सभा-जनों को सुनाया करते थे।

जैन यतियों का ऐसा उपदेश-क्रम प्रायः सदा चलता रहता है। इनका मुख्य निवास स्थान जैन उपाश्रयों में होता है, जहां पर जैन महाजनों की ठीक संख्या होती है। बड़े गावों और शहरों में एक से अधिक भी जैन यतिजनों के ठहरने

रहने के लिए उपाश्रय होते हैं। इन जैन-यति-वर्ग की भिन्न-भिन्न गुरु-परम्पराएं होती हैं। उन परम्पराओं के उपासक-वर्ग भी अलग-अलग होते हैं और ऐसा उपासक-वर्ग कहीं बड़ी संख्या में हुआ तो उनका अपना उपाश्रय भी अलग होता है। इन उपाश्रयों में आकर ठहरने वाले यति-जन अपनी परम्पराओं के मानने वाले उपासक-वर्ग को सदा धर्मोपदेश सुनाते रहते हैं। श्रोतावर्ग में स्त्री, पुरुष आदि सभी होते हैं। यदि कोई विशिष्ट धर्मोपदेशक व्यक्ति आ जाता है और उसकी उपदेश-शैली अच्छी आकर्षक होती है तो व्याख्यान-सभा में जैन, जैनेतर आदि अनेक श्रोतागण आते रहते हैं। गांवों के या नगरों के मुख्य राज्याधिकारी, जागीरदार, ठाकुर इत्यादि भी इनके उपदेश बड़ी श्रद्धा से सुनने आते हैं। वर्षा-काल के ४-५ महीने ये इस प्रकार एक स्थान में रहते हैं, बाकी के समय यथा-वश्यक सदा परिभ्रमण करते रहते हैं।

राजस्थान के मध्यकालीन इतिहास-युग में इन जैन-यतियों का समाज पर बड़ा प्रभाव था। ये विद्योपासक तो होते ही थे परन्तु, साथ में समाज की गति-स्थिति में भी इनका बड़ा योग रहता था। उपासक-वर्ग के अतिरिक्त अन्य जनता भी इनके प्रति बड़ी श्रद्धा-भक्ति रखती थी। इसलिये इन यतिजनों को अपने देश और समाज की आन्तर-बाह्य सभी प्रकार की जानकारी होती थी। प्रसंगानुसार भिन्न-भिन्न देशों में ये जाते-आते रहते थे इसलिये इनको उन-उन देशों का आन्तर-बाह्य स्वरूप भी अच्छी तरह ज्ञात रहता था। इनमें से बहुत से यति तो संस्कृत, प्राकृत भाषा के बड़े विद्वान् होते थे और काव्य, कोष, व्याकरण, छंद, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि शास्त्रों के मर्मज्ञ अभ्यासी और ग्रन्थकार भी होते थे। इन जैन-यतिजनों के रचे हुए सैकड़ों हजारों ग्रन्थ आज भी विद्यमान हैं। संस्कृत और प्राकृत तथा अपभ्रंश के उपरांत इन्होंने तत्कालीन अपनी देश-भाषा में भी वैसी ही असंख्य रचनाएं गुम्फित की हैं, क्योंकि धर्म-गुरु होने के नाते धर्मोपदेश करते रहना इनका मुख्य जीवन कार्य रहता था इसलिये अपने श्रोतावर्ग के लिये वैसी साहित्यिक रचनाएं भी निरंतर करते रहते थे जिसके श्रवण में सामान्य जनता को रुचि हो और उसके द्वारा उनकी संस्कारवृद्धि हो। जैन-यतियों का यह धर्मोपदेश केवल जन-मन-रंजन करने की दृष्टि से नहीं होता था, अपितु उनका उद्देश्य धर्मोपदेश द्वारा श्रोताओं को धर्म-मार्ग में श्रद्धान्वित करना ही होता था। लोकों में दया, दान, शील, सदाचार आदि का प्रचार करना ही उनके धर्मोपदेश का मुख्य लक्ष्य रहता था। अपने इस उद्देश्य को अधिक रुचिकर बनाने के लिये ये नाना-प्रकार की धर्म-कथाओं और लोक-कथाओं का खूब उपयोग करते थे। लोकों में प्रचलित कथा-कहानियां, आख्यान, वार्ता आदि का आधार

लेकर वे अपनी रचनाएं करते थे और उनको श्रोताजनों को सुन्दर ढंग से सुनाते रहते थे। इस प्रकार की रचनाएं, जैसा कि ऊपर सूचित किया है, वे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं के अतिरिक्त सर्वजनगम्य प्रचलित देश-भाषा में भी करते थे।

प्रस्तुत रचना के कर्ता कवि हेमरत्न ने भी इसी उद्देश्य को लक्ष्य कर इसकी रचना की है। हेमरत्न-कृत इस प्रकार की अन्य कई रचनाएं उपलब्ध हैं, जिनमें 'अभयकुमार चउपई' और 'महीपाल चउपई' भी हैं, जो प्रस्तुत चउपई के पहले विक्रम संवत् १६३६ में रचित प्राप्त होती हैं। बाद में रची हुई 'शीलवती कथा' तथा 'लीलावती कथा', 'रामरासो', 'सीताचरित' आदि नाम की भी इनकी अन्य रचनाएं उपलब्ध हैं। इससे ज्ञात होता है कि ये एक अच्छे कथाकार और कवि थे।

चित्तौड़ की रानी पद्मिनी या पद्मावती की कथा मूल घटना के समय से ही मालवा, गुजरात आदि प्रदेशवासी जनता में बहुत लोकप्रिय हो गई थी और आबाल-वृद्ध जन-समूह में सर्वत्र कही-सुनी जाती थी। राजस्थान से दूर पूर्व-भारत में भी यह कथा खूब प्रचलित हो गई और इसी कारण जायसी जैसे मुसलमान कवि ने भी इसको अवधी भाषा में उक्त रूप से कविताबद्ध करने का सुन्दर प्रयत्न किया था। राजस्थानी में शायद इससे पहले यह कथा इस रूप में कविताबद्ध नहीं हुई थी इसलिए हेमरत्न कवि ने चउपई के रूप में इसकी रचना की।

ऐतिहासिक दृष्टि से इस रचना का विशेष महत्व है। जैसा कि ऊपर सूचित किया गया है, यह रचना उदयपुर राज्य और राजवंश से विशिष्ट सम्बन्ध रखने वाले ओसवाल जाति के कावड़िया गोत्रीय ताराचन्द के आदेश और अनुरोध से बनाई गई है। ताराचन्द जैसा कि ऊपर कहा गया है, भामाशाह का छोटा भाई था। महाराणा प्रताप का वह विश्वस्त राज्याधिकारी था। भामासाह के साथ वह भी प्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध का एक अग्रणी योद्धा और सैन्य संचालक था। उसने चित्तौड़ के राजवंश की रक्षा के निमित्त अनेक प्रकार से सेवा की थी, अतः उसके मन में चित्तौड़ के गौरव की गाथा का गान करवाने का उल्लास होना स्वाभाविक ही था। कवि हेमरत्न विक्रम संवत् १६४५ में सादड़ी नगर में चातुर्मास करने निमित्त आये, तब ताराचन्द उस समय वहां पर बड़े राज्याधिकारी के रूप में नियुक्त था। जैसी कि जैन-समाज की परम्परा है, ताराचन्द यथा-समय जैन उपाश्रय में अपने धर्म-गुरुओं को वंदन-नमन करने के लिए आता रहता था और उनका धर्मोपदेश भी सुनता रहता था। कवि हेमरत्न अच्छे कवि थे और वे धर्मोपदेश के समय अपनी रचनाओं

पर प्रवचन करते थे। ताराचन्द उनकी इन रचनाओं को सुन कर प्रसन्न होता था और प्रसंग निकलने पर उसने कवि हेमरत्न को निवेदन किया कि वे चित्तौड़ के इतिहास की पद्मिनी-विषयक गौरवपूर्ण गाथा का भी अपनी कवितामयी वाणी में गान करें। ताराचन्द की इस प्रार्थना पर हेमरत्न ने इस 'गोरा बादल-पदमिणी चउपई' की सुन्दर रचना करना शुरू किया जो सं० १६४५ के चातुर्मास के श्रावण सुदी पंचमी के दिन समाप्त हुई। इससे २८६ वर्ष पहले कथा की नायिका महारानी पद्मिनी का प्राणोत्सर्ग भी शायद श्रावण मास में ही हुआ था।

प्रस्तुत चउपई के रचनाकाल के कोई २०-२१ वर्ष पहले ही अकबर द्वारा किए गए चित्तौड़ के सर्वनाश के दुखद संस्मरण मेवाड़ की जनता के मानस को खिन्न बनाए हुए थे। केवल मेवाड़ का ही नहीं, सारे भारत का वह गर्वोन्नत दुर्ग ध्वस्त हो चुका था और वहां पर हिन्दू-सूर्य की तेजस्वी किरणों का प्रकाश म्लेच्छरूपी राहु के आक्रमण से ग्रस्त हो गया था। उस अन्धकारमय समय में वहां पर सिंहों की गर्जना के स्थान पर दिन रात शृगालों की चिल्लाहट सुनाई देती थी। उस पवित्र दुर्ग का स्वामी वनराज राणा प्रताप अब मेवाड़ के उन पहाड़ों की कन्दराओं में जा बसा था जो उन शृगालों के अपवित्र शब्दों की चिल्लाहट से अस्पृष्ट थी। जो कोई ऐरे-गैरे शृगाल उन कन्दराओं में घुसने का प्रयत्न करते थे तो उनका सफाया उस वनराज के साथी सिंह-शावक बड़ी चालाकी और चतुराई से करते रहते थे। चित्तौड़ के पतन के ११ वर्ष बाद, उन शृगालों की बड़ी फौज ने, इन पहाड़ों की कन्दराओं से घिरी हुई हल्दीघाटी में, वनराज को जा घेरा, परन्तु वनराज अपने इने-गिने सिंह शूरमाओं के साथ उन गीदड़ों पर ऐसा टूट कर पड़ा कि जिसके कारण उनको हल्दीघाटी के विषम जंगलों से भागकर निकलना और भूख-प्यास से अपने प्राणों की रक्षा करना भी कठिन हो गया। उस हल्दीघाटी के युद्ध में ताराचन्द भी एक वीर योद्धा के रूप में उपस्थित था। महाराणा प्रताप के उस सुरक्षित पहाड़ी प्रदेश का मारवाड़ और गुजरात के धोरी-मार्गों पर अवस्थित उक्त सादड़ी नगर एक बड़ा महत्त्व का नाका था। अर्वली के दुर्गम स्थानों और रास्तों का वह प्रवेश द्वार था। इसलिए उसकी रक्षा का भार महाराणा ने ताराचन्द को सौंपा था। उसी ताराचन्द के अनुरोध से उस सादड़ी नगर में इस 'पदमिणी चउपई' की रचना हुई है, अतः इस रचना का यह ऐतिहासिक महत्त्व भी है।

कवि के कथनानुसार इस रचना के समय महाराणा प्रताप विद्यमान थे। उनका शौर्य-प्रताप दिन प्रति दिन बढ़ रहा था और उनका बुद्धिमान मन्त्री भामाशाह स्वामिधर्म का पालन करता हुआ शत्रुओं के विध्वंस में व्यस्त था।

उसका भाई ताराचन्द भी अपनी मातृ-भूमि की रक्षा करने में इन्द्र के जैसा वलशाली होकर अपने देश के सब वैरियों को सीधा कर रहा था। ताराचन्द इस प्रकार चित्तौड़ के राजवंश का एक विशिष्ट स्वामिभक्त था, इसलिए उसके द्वारा स्वामिभक्ति का गुणगान करना-कराना स्वाभाविक था। चित्तौड़ की पद्मिनी की कथा में गोरा बादल की स्वामिभक्ति का बड़ा अनुपम उदाहरण है और उनके द्वारा चित्तौड़ के गौरव की अद्‌भुत रक्षा का वर्णन हुआ है। अतः इस कथा की कवि हेमरत्न द्वारा रचना कराना ताराचन्द का बहुत्त ही उदात्त और उत्तम आदर्श प्रकट करता है।

कवि हेमरत्न की यह 'पदमिणी चउपई' बहुत लोकप्रिय हुई। उसी समय इसकी अनेक प्रतिलिपियां हुई और मारवाड़, मेवाड़, मालवा, गुजरात आदि प्रदेशों में इसका खूब प्रचार हुआ। इसके अनुकरण रूप में पीछे से अन्य कवियों ने भी इस कथा को अपनी कवित्व-शक्ति से अलंकृत किया। इनमें लब्धोदय कवि की बनाई हुई ऐसी ही एक 'पद्मिनी चरित्र चउपई' नामक रचना है, जो हेमरत्न की रचना के कोई ६०-६२ वर्ष बाद (संवत् १७०६-७ में) बनी है। लब्धोदय भी कवि हेमरत्न की तरह विद्वान् जैन-यति थे। वे भी लोकप्रिय धर्म-कथाओं को अपनी कविता में गुम्फित कर धर्मोपदेश के समय उन पर प्रवचन किया करते थे। वे जैन यति-संप्रदाय के खरतर गच्छ नामक गुरु-परम्परा के यति थे। संवत् १७०६-७ में उन्होंने उदयपुर में चातुर्मास किया। उस समय उनके गच्छ के अग्रणी ओसवाल जातीय कटारिया गोत्र वाले भागचन्द ने उनसे पद्मिनी चरित्र की कथा को चउपई के रूप में गुम्फित करने का अनुरोध किया। भागचन्द का बड़ा भाई हंसराज उदयपुर की राज्य-सेवा में था। वह महाराणा जगत्सिंह की माता जंबूवती का कार्यवाहक प्रधान था। भागचन्द का एक भाई डूंगरसी था जो धर्म-कर्म में बड़ी आस्था रखता था। लब्धोदय ने इनकी प्रेरणा से 'पद्मिनी चरित्र चउपई' नाम की नूतन रचना की। हेमरत्न की रचना जब मुख्य करके दोहा और चौपाई छन्द में ग्रंथित हुई है तब लब्धोदय ने अपनी रचना विविध प्रकार के देशी-रागों की गीतवद्ध शैली में की है, पर इसकी कथा का मुख्य वर्णन हेमरत्न की रचना से ही लिया गया है। यह चउपई, बीकानेर के 'सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट' द्वारा हाल ही में प्रकाशित की गई है। इसके साथ किसी प्राचीन मल्ल कवि कृत 'गोरा बादल कवित्त', तथा जटमल नाहर कृत 'पद्मिनी चरित्र' अथवा 'गोरा बादल कथा' नामक रचनाएं भी प्रकाशित कर दी गई हैं।

जैसा की ऊपर सूचित किया गया है—कालक्रम की दृष्टि से इन पद्मिनी

चरित्र विषयक कथा-कृतियों में, मुसलमान कवि जायसी रचित पदमावत का प्रथम स्थान है, जो वि० सं० १५६७ में बनी है। उसके बाद दूसरा स्थान कवि हेमरत्न की प्रस्तुत 'गोरा बादल पदमिणी चउपई' का है। यह जायसी के बाद (संवत् १६४५ में) ४८ वर्ष पीछे बनी है। तीसरी रचना लब्धोदय कृत 'पद्मिनी चरित्र चउपई' है, जो संवत् १७०६-७ में हेमरत्न से ६०-६२ वर्ष बाद बनी है।

इनमें कविता की दृष्टि से जायसी की रचना बहुत ही उत्कृष्ट कोटि की है। हेमरत्न की कृति कथा-वस्तु का वर्णन बड़े रोचक ढंग से भावोत्तेजक शैली में करती है। लब्धोदय हेमरत्न की ही वाणी का अनुसरण करता है।

हेमरत्न की पदमिणी चउपई के मूल सूत्र ये हैं— (१) चित्रकूट नाम के सुप्रसिद्ध और सुसमृद्ध दुर्ग का राजा गुहिलोत वंशी रतनसेन है (२) उसकी पटराणी प्रभावती है जो रूप में रंभा के समान और शील में सती के समान है। (३) पत्नी बड़ी पतिभक्ता और स्नेहमयी है। (४) प्रसंगवश किसी दिन राजा ने भोजन करते हुए रानी की रसोई-चातुरी में कुछ दोष बताया तो रानी ने उपहास-वश व्यंग्य वचन कह दिया कि यदि मेरी रसोई पसन्द नहीं आती है तो किसी दूसरी पद्मिनी को परण लाओ। (५) राजा इसके व्यंग्य वचन को सही करने के लिये किसी पद्मिनी स्त्री को व्याह लाने को राज्य से निकल पड़ा। (६) इधर-उधर परिभ्रमण करते हुए उसे किसी से सिंघल देश में पद्मिनी राजकुमारी का पता लगा। (७) वह बड़े परिश्रम-पूर्वक सिंघल पहुंचा और वहां अपने कौशल से सिंघल के राजा की पद्मावती नामक पद्मिनी-लक्षण-संयुक्त राजकन्या के साथ लग्न कर उसे सम्मान के साथ चित्तौड़ ले आया। (८) बाद में, वहां पर एक राघवचेतन नाम का ब्राह्मण व्यास राज दरबार में आता है और वह अपनी विद्या से राजा को प्रसन्न कर लेता है। (९) पर, एक अनुचित घटना-वश राजा के मन में उस ब्राह्मण के चरित्र के विषय में संदेह उत्पन्न हो जाता है, इससे वह उसको वहां से अपमान पूर्वक निकाल देता है। (१०) ब्राह्मण कुपित होकर राजा के प्रति द्वेषभाव रखता हुआ उसका वैर लेने की भावना से दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के दरबार में पहुँच जाता है। (११) वहां पर भी अपनी तांत्रिक-विद्या के कारण बादशाह को प्रसन्न कर लेता है और बादशाह की काम-लोलुपता को उत्तेजित करने के लिये वह चित्तौड़ के राजा की पद्मिनी रानी के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करता है। (१२) लम्पट बादशाह पद्मिनी को हस्तगत करने के लिये बड़ी सेना लेकर चित्तौड़ पर चढ़ाई कर देता है। (१३) बहुत कुछ प्रयत्न और संघर्ष करने पर भी बल-पूर्वक वह चित्तौड़ का दुर्ग नहीं ले सकता है इसलिये छल-प्रयोग द्वारा राजा को भ्रम में डाल कर वह

किला देखने के बहाने राजा का मेहमान बनता है। (१४) राजा अपने क्षत्रियोचित व्यवहार से उसका आतिथ्य करता है पर, वह विश्वासघाती सुलतान किले से उतरते समय राजा को कैद करवा कर अपने शिविर में ले जाता है। (१५) अलाउद्दीन राजा को बहुत कष्ट देता है जिसको देख-सुन कर चित्तौड़-निवासी सब ही बड़े संकट में पड़ गये। किस तरह राजा को इस संकट से छुड़ाया जाय, इसके उपाय सोच रहे हैं। (१६) इतने में अलाउद्दीन ने अपने दूत को किले पर भेजा और कहलवाया कि 'यदि पद्मिनी रानी मुझे सौंप दी जाय तो मैं राजा को कैद से छोड़ दूंगा और चित्तौड़ से चला जाऊंगा।' (१७) राजा की पटरानी का पुत्र वीरभाण, जो अपनी विमाता पद्मिनी से द्वेष रखता है, वह अपने सरदारों से कहता है कि यदि चित्तौड़ की और राजा की रक्षा करनी है तो पद्मिनी को सुलतान के अधीन कर देने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। (१८) पद्मिनी के कानों पर यह बात जाती है तो वह बड़ी खिन्न होती है। एक तरफ चित्तौड़ का और अपने स्वामी के जीवन की रक्षा का प्रश्न है और दूसरी तरफ अपने सती-धर्म और कुल की मर्यादा की रक्षा का प्रश्न है। वह अपने जीवन की रक्षा की कोई चिन्ता नहीं करती। वह सोचती है कि 'मैं तो अपने प्राणों का क्षण भर में त्याग करके अपने सतीत्व की रक्षा कर सकती हूँ। मैं जीते-जी तो कभी उस दुष्ट सुलतान के हाथों नहीं पड़ूंगी, परंतु वैसा करने पर भी क्या मेरे स्वामी जीवित रह सकेंगे और चित्तौड़ का सर्वनाश होना रुक जायगा।' (१९) इसके बारे में कुछ विचार-विनिमय करने के लिये वह, अपने विश्वासपात्र वीर राजपूत योद्धा गोरा रावत के घर पर जाती है। गोरा बड़ा वीर और पराक्रमी राजपूत है पर, किसी कारण से वह राजा रतनसेन से असन्तुष्ट होकर राज-दरबार से अलिप्त रहता है। वह राजमाता पद्मिनी के विचार सुन कर बहुत चिन्तित हो जाता है और किस प्रकार इस संकट का सामना किया जाय, इसका उपाय सोचता है। उसका एक भतीजा बादल युवा है जो बड़ा बुद्धिमान् और शूर-वीर भी है। गोरा उससे परामर्श करता है। दोनों काका-भतीजे एक अद्‌भुत छल-प्रयोग द्वारा राजा को कैद से छुड़ा लेने की योजना गढ़ते हैं। रानी पद्मिनी इसको सुन कर प्रसन्न होती है। (२०) तदनुसार वे दोनों योद्धा राज-दरबारियों से मिलते हैं और उनको अपनी योजना का रहस्य समझाते हैं। सब राज-दरबारी भी इससे सहमत होते हैं और तदनुसार सारी तैयारी करके, पद्मिनी के बहाने किसी सुन्दर सुभट को पालकी में छुपा कर, उसके अनुरूप बड़ी सजधज के साथ सैकड़ों पालकियों का लवाजमा लेकर अलाउद्दीन के शिविर में पहुँचते हैं। बादशाह इस जाल से सर्वथा अजान है और बड़ी

उत्सुकता के साथ पद्मिनी के स्वागत की प्रतीक्षा कर रहा है। (२१) गोरा और बादल राजा को चुपचाप सुभट की पालकी में बिठा देते हैं और उसे किले की तरफ रवाना कर देते हैं। इतने ही में इसका भेद खुल जाता है और सुलतान के शिविर में भगदौड़ मच जाती है। 'दग़ा-दग़ा' की चिल्लाहट के साथ मारा-मारी और काटा-काटी शुरू हो जाती है। पालकियों में छिपे हुए राजपूत सैनिक गोरा योद्धा के नेतृत्व में अद्भुत वीरता दिखाते हुए सैकड़ों का संहार कर देते हैं। गोरा वीर तो इस तरह वहां वीरगति को प्राप्त हो जाता है और वीर बादल राजा रतनसेन को किले में ले आता है। (२२) सुलतान की सेना का बहुत संहार हो जाने से वह हताश हो कर दिल्ली लौट जाता है। इस तरह अद्भुत बुद्धिबल और पराक्रम से राजा रतनसेन और पद्मिनी रानी पद्मावती की रक्षा करने के कारण, बादल वीर का सर्वत्र जय जयकार होता है।

हेमरत्न के इस कथा-सूत्र में असंभवनीय घटना का किंचित् भी आभास नहीं है। सब घटना क्रमबद्ध और बहुत स्वाभाविक ढंग से वर्णित की गई है। स्थान-स्थान पर हेमरत्न ने अपने कथा-सूत्र के आधारभूत कई प्राचीन कवित्तों आदि का उल्लेख किया है, जो निःसंदेह उसके पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं में से हैं।

इसके घटना-वर्णन में जायसी के वर्णन की तरह कोई भी प्रसंग असंगत, असम्बद्ध, असंभव और अस्वाभाविक नहीं लगता। इस रचना में न कहीं अतिशयोक्ति है न कविता का आडंबर है। उक्तियां बड़ी हृदयग्राहिणी और तथ्यानुसारिणी हैं। कवि राजस्थान के जन-जीवन की धर्मभावना का और मान-मर्यादा का प्रगाढ़ अनुभवी है। वह लोक-विश्रुत ऐतिहासिक प्रवाद को अपनी सम्मत और सद्भाव-प्ररूपक सरल भाषा में कवितावद्ध करके अपने देशवासियों को सुनाना चाहता है, और वैसा करके वह अनेक मर्मान्तिक आघातों से मूर्छित जनता के प्राणों में चेतना का संचार करने वाला जीवन-रस उँडेलना चाहता है। वह कल्पना-भरे वाग्विलास के कामोत्तेजक मद्यानुकारी, काव्यरस के कटोरे पिला कर अपने श्रोताजनों की कुत्सित प्रशंसा प्राप्त करना नहीं चाहता। इसलिए यह प्रेम की पीड़ा से पीड़ित प्राणियों के मन को बहलाने वाला प्रेमाख्यान नहीं है अपितु, संस्कारप्रिय और सद्धर्मानुरागी जनों के लिए स्वामिधर्म, शील, सदाचार और सात्विक गुण का उद्बोधक एक सरस सत्वाख्यान है।

जायसी केवल काव्य की दृष्टि से कथा का आलेखन करता है। उसके भावों में आत्मीयता का आभास नहीं है। पढ़ने में कविता का रस मिलता है, परन्तु चरित्रगत पात्रों के जीवन-चित्रण में कोई निजत्व का संवेदन नहीं होता।

उसके वणन बड़े लंबे-लंबे और उपमादि अलंकारों से भरे पड़े हैं। कवि जैसे अपनी काव्य-शक्ति का प्रदर्शन करने बैठा हो वैसा उसकी रचना पढ़ने से आभास होता है। जायसी के कुछ वर्णन तो ऐसे मुसलमानी पुट देकर किये गये हैं कि जिनको संस्कारी धर्मनिष्ठ हिन्दू तो पढ़ना सुनना भी पसन्द नहीं करेगा।[1] हेमरत्न की रचना सहज, अकृत्रिम हृदयंगम और भावोद्बोधक है। पद्मिनी और उससे संबंधित राजा रत्नसेन, गोरा-बादल, राघवचेतन और अलाउद्दीन आदि सभी पात्रों का चित्रण, उन-उनके चरित्र और स्वभावानुरूप बहुत ही अनाडम्बर स्वरूप में हुआ है। इसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता का आभास नहीं होता है। ऐसा मालूम देता है कि हेमरत्न मानों अपनी आंखों देखी घटनाओं का अनुभूत तथ्यस्वरूप वर्णन कर रहा है। इस वर्णन में एक प्रकार से उसका मानों निजी आत्मीय सम्बन्ध व्यक्त हो रहा है। वह चित्तौड़ के उस संकट के दुःखद संस्मरणों का साक्षात् संवेदन अनुभव करता हुआ अपनी कविता को वाणी दे रहा है। जायसी, मात्र एक तटस्थ व्यक्ति की तरह केवल अपनी कविता-शक्ति को बतलाता है। चित्तौड़ के इस दुःखद इतिहास से उसका कोई अंतरंग संबंध नहीं है। उस दुर्घटना के साथ उसका तादात्म्य भाव नहीं है। इस दृष्टि से हेमरत्न की यह राजस्थानी रचना, एक पुण्य पवित्र कथा की तरह पढ़ने-सुनने लायक उत्कृष्ट कोटि की धर्म-कथा है।

इसमें भारत की एक श्रेष्ठ सती नारी के शीलव्रत का और सच्चे स्वामि-भक्त वीर राजपूत योद्धा के स्वधर्म-रक्षक उदात्त जीवन-व्रत का श्रद्धापूर्ण आलेखन है।

पद्मिनी की कथा हमारे देश और राष्ट्र के एक अत्यन्त दुःखद, संकटपूर्ण और विपत्तिजनक समय का हृदयविदारक स्मरण कराती है। पद्मिनी कल्पना-कल्पित केवल एक मनोरंजक कहानी की सामान्य नायिका नहीं है-वह हमारी संस्कृति-समृद्धि और गरिमा की वास्तविक ज्योति की प्रतीक-सी प्रज्वलित दीपिका थी, जो उस प्रलयकाल के प्रचण्ड अंधड़ में स्वयं विलीन हो गई और संवत् १३६० में चित्तौड़ के उस भस्मीभूत महादुर्ग में, अपने राष्ट्र, देश, धर्म और जातीय गौरव की रक्षा के निमित्त, सैंकड़ों सती-सुन्दरियों के साथ, अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं में उसने अपनी आहुति देदी। इस प्रकार अपनी अनुपम आत्मबली द्वारा उसने अपनी जाति की भावी सन्तति के लिए उक्त विनाश के

१ जैसे रतनसेन द्वारा बादशाह की ज़ियाफत का (४५) 'बादशाह भोजखण्ड' का वर्णन आदि।

कठोर एवं करुण-क्रन्दन के साथ राष्ट्र-गौरव के गर्वपूर्ण गंभीर गान हृदयंगम सुर भी वह सुनाती गई। उसके ये सुर हमारे लिए दैवी प्रघोष हैं। यह प्रघोष विलासवृत्ति को उत्तेजित करने वाले शृंगार-प्रधान काव्य रस का विषय नहीं है। इस उदात्त प्रघोष की प्रतिध्वनि हेमरत्न के स्वधर्म और स्वराष्ट्र-भक्त-हृदय में गूंज रही थी इसलिए उसने अपनी वाणी द्वारा इसे प्रस्तुत रचना में व्यक्त की।

हेमरत्न वाग्विलासी कवि नहीं है। वह अपनी वाणी के विलास का प्रदर्शन करने की दृष्टि से पद्मिनी चउपई नहीं बनाता है। वह संयमी यति है-जनता में संयम और सदाचार का प्रसार करना उसकी साहित्योपासना का एक-मात्र लक्ष्य है। वह अपने देश और समाज की मान-मर्यादा का रक्षक सैनिक है, धर्मोपदेशक है; वह राष्ट्र के गौरव में गर्वानुभव करने वाला कवि है और अपनी कविता द्वारा अपने देशवासियों को भी वैसा ही गर्वानुभव कराने की कामना रखता है। हेमरत्न की इस रचना को इसी दृष्टि से पढ़ना चाहिए और इसके उदात्त भाव को आत्मसात् करना चाहिए। जायसी के 'पदमावत' के समान इसनें अनेक अप्रासंगिक उपाख्यानों, विविध रसों, अलंकारों, अन्योक्तियों समासोक्तियों, उपमाओं इत्यादि से भरे शब्दसमूह रूपी छिलकों का चर्वण कर के उसके ऊपरी रस का आस्वादन करने में आनन्द और विलास का अनुभव करने की अनुपादेय आशा रखना उचित नहीं है।

जायसी पद्मिनी की वास्तविक आत्मा को नहीं जानता था। उसको उसके लोक-विश्रुत इतिहास का भी विशेष ज्ञान नहीं था। वह चित्तौड़ के राजा रतनसेन को चौहान मानता है क्योंकि शायद उसने दिल्ली के मुसलमानों के साथ सर्वप्रथम संघर्ष करने वाले पृथ्वीराज चौहान के समान अलाउद्दीन के साथ लड़ने वाले चित्तौड़ के राजा को भी चौहान ही समझा हो। हिन्दू जनता में सर्वत्र प्रचलित और श्रद्धापूर्वक कही-सुनी जाने वाली पद्मिनी की कथा को अपनी कविता-शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए एक अच्छा लोकप्रिय विषय समझा, इसलिए उसने पदमावत नाम से अवधी भाषा में यह महाकाव्य-सा बड़ा ग्रन्थ रच डाला। इसकी रचना में उसने अपने लौकिक ज्ञान एवं कवि-चातुरी का अच्छा प्रदर्शन किया परंतु, अपनी रचना की काया को विशालता देने की दृष्टि से उसने इस कहानी में अनेक संबद्ध-असंबद्ध, उपयुक्त-अनुपयुक्त, प्रासंगिक-अप्रासंगिक आदि बातों और वर्णनों से इतनी जटिलता ला दी कि इसमें पद्मिनी का वास्तविक एवं मौलिक कथा-शरीर ही विलुप्त हो गया। मुख्यतया उसके कुछ हाथ-पैर उदरादि स्थूल अंग ही इसमें दिखाई देते हैं। वह मुसलिम सूफी मत

का अनुयायी था इसलिए जगह-जगह उसने अपने संस्कारों का आरोप कथा के भावों में भी गुम्फित कर दिया है। जैसा कि हमने ऊपर इंगित किया है, जायसी की कथा के मूल मर्म के साथ कोई तादात्म्य नहीं था। वह केवल कवि था—कवि-सुलभ वर्ण्य विषय को शब्दों के आडंबर से अलंकृत कर उसने इस कथा-कलेवर को पहलवान के शरीर की तरह स्थूल बना दिया। इस स्थूलता से पद्मिनी के जीवनवृत्त की तात्विक एवं तेजस्वी और तन्वी आकृति आच्छन्न हो गई। जायसी ने रतनसेन, पद्मिनी, अलाउद्दीन, गोरा-बादल, राघवचेतन जैसे वास्तविक ऐतिहासिक व्यक्तियों को भी अन्यान्य कल्पित पात्रों के साथ शतरंज के प्यादे के समान, एक ही चाल से चलने वाले कृत्रिम पुतले बना दिये। इससे पद्मिनी की तथ्यभूत दिव्यमूर्ति का अधिष्ठातृत्व ही नष्ट हो गया। आदि से अन्त तक पदमावत को पढ़ने वालों को यही आभास हो जाता है कि यह सारी की सारी कथा जायसी की कल्पना-प्रसूत है। शायद वह स्वयं भी ऐसा ही मानता था और इसीलिये उसने अंत में इसे एक रूपक-कथा कह दिया। जायसी सूफी संस्कारों के अनुसार इसे केवल एक प्रेम की कहानी मात्र मानता है और इसके अन्तर में छिपे हुए बीज को काव्यरस द्वारा सिंचित कर उसको अंकुरित करना चाहता है। इसीलिये हिन्दी भाषा के साहित्य में पदमावत एक अद्भुत प्रेमाख्यान के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर सका है।

हिन्दी-साहित्य के अनेक विद्वान् इस प्रेमाख्यान पर मुग्ध हैं। अनेक विद्वानों ने इस पर विवेचनात्मक ग्रन्थ, प्रबन्ध, निबन्ध आदि लिखे हैं। पदमावत पर कई टीका, टिप्पण, व्याख्या आदि भी लिखे गए हैं। इसमें कोई शक नहीं कि पदमावत हमारी देश-भाषा का एक उत्तम काव्य है और कविता के प्रेमियों को उसके अध्ययन-मनन में विशेष प्रेमरस की अनुभूति भी होती होगी।

जायसी स्वयं ही इस बात को अपने शब्दों द्वारा व्यक्त करता है कि—मैंने इस प्रेम-कथा को जोड़ कर, कवितावद्ध कर लोगों को सुनाया है। जिसने भी इस प्रेम-कथा को सुना है उसने प्रेम की पीड़ा के महत्त्व का अनुभव किया है— इत्यादि। सो इस प्रकार जायसी की पद्मिनी-कथा केवल प्रेम की पीड़ा को अभिव्यक्त करने वाली एक रूपक-कथा मात्र है। इस कथा का मर्म कोई वास्तविक अर्थ नहीं रखता।

पर, जैसा कि ऊपर दिये गए वर्णन से ज्ञात होता है, हेमरत्न ने भी इसी पद्मिनी की लोक-कथा को कविता-बद्ध किया है, परंतु उसने इसे कोई प्रेम की कहानी नहीं बताई—वह तो इसे आदर्श हिन्दू नारी के पवित्र शील की और सती-धर्म की रक्षा-सूचक सच्ची कहानी मानता है; वह इसे स्वदेश और स्व-

धर्म के रक्षक और पोषक वीरत्व की गाथा समझता है। हेमरत्न की यह रचना हमारा एक राष्ट्रीय गीत है। यह गीत हमारे राष्ट्र के उस सर्वनाशी संकटकाल के मर्मान्तिक एवं करुण-नाद की आंसू लाने वाली दुःखद धुन भी सुनाता है और उस कराल-काल में भी राष्ट्र के गौरव की रक्षा के निमित्त शौर्य के मद में मस्त होकर हँसते, नाचते और गाते हुए अपने प्राणों की आहुति देने वाले वीर और वीरांगनाओं की हुंकारों से गूंजती हुई रोमांचक धुन भी सुनाता है। हेमरत्न ने जिस प्रकार पद्मिनी की कथा वर्णित की है प्रायः उसी प्रकार उसके सम-कालीन मुसलमान इतिहास-लेखकों ने भी उस घटना का वर्णन किया है।

पर, जायसी की असंवद्ध और अप्रासंगिक बातों से लदी हुई पद्मिनी की कहानी के प्रकाश में आने पर अनेक पाठकों को उसकी तथ्यता पर शंका होने लगी और ऐतिहासिक जिज्ञासुओं ने उसके बारे में ऊहापोह शुरू किया। भारत के प्राचीन इतिहास को शंका की दृष्टि से देखने वालों को जायसी से पूर्ववर्ती, पद्मिनी की कथा का कोई विश्वसनीय स्रोत ज्ञात नहीं हुआ। अतः उन्होंने यह मत बनाया कि पद्मिनी की यह कथा जायसी की ही कल्पना मात्र है, इसमें कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर उसके हिन्दू राजा को नष्ट कर दिया और चित्तौड़ को अपने इस्लामी झंडे के नीचे रख दिया। इसका उल्लेख अलाउद्दीन के स्वयं के दरबारी लेखकों ने किया है और उनमें सबसे मुख्य प्रसिद्ध लेखक अमीर खुसरो हैं। अमीर खुसरो स्वयं चित्तौड़ के आक्रमण वाले प्रसंग पर अलाउद्दीन के साथ था। उसने उस लड़ाई के वर्णन में वहां के राजा रतनसेन और रानी पद्मावती या पद्मिनी का किंचित् भी उल्लेख नहीं किया। पिछले अकबर-कालीन मुसलमान इतिहास लेखकों ने, जिनमें फरिश्ता और अबुल फ़जल आदि हैं, पद्मिनी की घटना का वर्णन किया है, परन्तु वे जायसी के बाद हुए हैं, अतः उनकी कथा का मुख्य आधार जायसी का पद्मावत ही है। उसी के आधार पर पीछे से हिन्दू कवियों ने भी पद्मिनी की कथा को प्रचारित किया-इत्यादि। इस विचार के मुख्य प्रचारक हैं प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता बंगाली विद्वान् डॉ० कालिकारंजन कानूनगो[1]। डॉ० कानूनगो ने अपने विचारों की पुष्टि में कुछ तर्क दिये हैं। एक तो यह कि अलाउद्दीन के समकालीन इतिहास लेखकों ने पद्मिनी-विषयक कोई उल्लेख नहीं किया। दूसरा तर्क जायसी के पहले की पद्मिनी-विषयक कोई रचना

१. देखिए Studies in Rajput History-Kalika Ranjan Qanungo (स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री कालिकारंजन कानूनगो), १९६०

नहीं मिलना है। तीसरा तर्क यह है कि पिछले भाट-चारणों ने जो पद्मिनी की कथा कही है उसमें परस्पर विसंवाद और कालक्रम का असंवद्ध उल्लेख है। भाट-चारणों की बातों के आधार पर सबसे पहले कर्नल जेम्स टॉड ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'राजस्थान का इतिहास' (Annals & Antiquities of Rajasthan) नामक पुस्तक में पद्मिनी की घटना का वर्णन लिखा, जिसमें उसने पद्मिनी के पति का नाम भीमसिंह लिखा है। मुंहता नैणसी की ख्यात में रतनसी को अजैसी का पुत्र लिखा है। चित्तौड़ के राजाओं के नामों में भीमसी या रतनसी का कोई पता नहीं है। अतः यह पद्मिनी केवल जायसी की कल्पना-प्रसूत चित्तौड़ की रानी है। इसमें कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है, इत्यादि।

डॉ॰ कानूनगो जैसे विचारकों का प्रतिवाद करने वालों में राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ॰ दशरथ शर्मा मुख्य हैं। इन्होंने कुछ विशिष्ट ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर पद्मिनी की कथा को ऐतिह्य-तथ्य-प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। बीकानेर से प्रकाशित उक्त लब्धोदय कवि रचित पद्मिनी चउपई के प्रारंभ में—'रानी पद्मिनी—एक विवेचन' इस नाम से डॉ॰ शर्मा लिखित छोटा-सा परंतु सारभूत लेख प्रकट हुआ है। इसमें डॉ॰ शर्माजी ने डॉ॰ कानूनगो के तर्कों का उत्तर देते हुए सूचित किया है कि—अलाउद्दीन के समकालीन लेखकों का पद्मिनी का जिक्र न करना कोई प्रबल प्रमाण नहीं है। उन लेखकों ने अनेक ऐसी बातों का उल्लेख नहीं किया जो अन्यान्य प्रमाणों से ज्ञात है। किसी लेखक के वर्णन में किसी घटना का न पाया जाना ऐतिहासिक तर्क नहीं। फिर, अमीर खुसरो के कुछ उल्लेख ऐसे हैं जिनमें पद्मिनी-विषयक घटना का आभास मिलता है।

दूसरा तर्क यह है कि जायसी के पहले का पद्मिनी के अस्तित्व का सूचक कोई ऐतिहासिक स्रोत नहीं मिलता, वह भी ठीक नहीं है। जायसी के पहले की 'छिताई वार्ता' (सं॰ १५८३) में रतनसेन, पद्मिनी, गोरा-बादल और चित्तौड़ की घटना का स्पष्ट उल्लेख है।

किसी अज्ञात कवि, भाट या चारण के बनाए हुए गोरा-बादल-चरित विषयक कवित्त उपलब्ध हुए हैं, जो भाषा की दृष्टि से जायसी के पूर्ववर्ती ज्ञात होते हैं। राजा रतनसिंह का चित्तौड़ में सं॰ १३५६ का स्पष्ट शिलालेख मिला है, जिससे उसका उस समय वहां राजा होना निश्चित है, इत्यादि।

इन तर्कों के आधार पर डॉ॰ शर्माजी का यह प्रामाणिक मत है कि 'जायसी' के पद्मावत से पूर्व ही पद्मिनी की कथा और अलाउद्दीन की लम्पटता पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी; जायसी ने पद्मावती, रतनसेन और बादल का

सृजन नहीं किया। ये जन-मानस में उससे पूर्व ही वर्तमान थे[1], इत्यादि।

हेमरत्न की प्रस्तुत 'पद्मिणी चउपइ' का अध्ययन करने पर विश्वास होता है कि डॉ० दशरथ शर्मा का अभिमत विशेष संगत और सत्य-पोषक है।

हमारे ख़याल से विद्वद्वर्य डॉ० कानूनगो की यह कल्पना तथ्यपूर्ण नहीं है कि जायसी के पहले का पद्मिनी की कथा का कोई आधार नहीं है और यह केवल जायसी की कल्पना-प्रसूत है। हेमरत्न की प्रस्तुत रचना के अवलोकन से ज्ञात होता है कि पद्मिनी की यह कथा राजस्थान में परा-पूर्व से प्रसिद्ध रही है। इस कथा के अनुसंधान में कुछ प्राचीन कवित्त जो उद्धृत किए गये हैं वे इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि पद्मिनी विषयक कथा-ज्ञापक, कवित्त आदि राजस्थान में प्राचीन काल से प्रचलित थे। कवित्त, छप्पय, दोहा, सोरठा आदि मुक्तक पद्य राजस्थान के इतिहास और लोकजीवन के बीजक रहे हैं। इन बीजकों के आधार पर राजस्थान का प्राचीन इतिहास जन-मानस में अपना स्थायी स्थान बनाये रखता था। इन्हीं बीजकों के आधार पर कथाकार, वार्ताकार आदि विज्ञ-जन लोगों को अपनी जानी-सुनी कथा-कहानियाँ, बात-ख्यात आदि कहा करते थे और यह क्रम परा-पूर्व से सर्वत्र चला आता था। इनमें जो कोई कवि विशेष प्रतिभा वाले व्यक्ति होते थे वे इन कथा-बीजकों के आधार वाली कथा-वार्ताओं को कविता-बद्ध भी कर लेते थे। पद्मिनी की कथा को भी इसी तरह मौखिक कथाकार, रास, भास, प्रबन्ध, चउपई आदि रूप में स्थानिक लोगों के सम्मुख एक वीर-शौर्य और सती-धर्म की महत्ता बतलाने वाली कथा के रूप में सुनाया करते थे। कवि लोग कविता के रूप में निबद्ध कर उसे एक स्थायी और अधिक व्यापक स्वरूप दे देते थे। जायसी, हेमरत्न आदि कवि इसी प्रकार पद्मिनी की कथा को स्थायी स्वरूप देने वाले कवि हैं। जिस प्रकार जायसी ने किन्हीं बीजकों के आधार पर अपनी पद्मावत कथा की रचना की उसी प्रकार हेमरत्न ने भी ऐसे ही किन्हीं बीजकों के आधार पर अपनी रचना की है। अतः यह कल्पना नितान्त भ्रमपूर्ण है कि जायसी की रचना ही पद्मिनी कथा का मूलाधार है। हेमरत्न की इस रचना में जायसी की किंचित् भी छाया नहीं है। केवल ५०वर्ष पहले होने वाले, पूर्व के दूर प्रदेश में रहने वाले, अवधी जैसी एक स्थानीय भाषा में रचना करने वाले तथा धर्म और जाति से सर्वथा भिन्न व्यक्तित्व वाले, कवि की रचना का, राजस्थान में रहने वाले धर्म-प्रिय और राष्ट्रभक्त जनों में प्रसिद्धि प्राप्त कर लेना किसी प्रकार सम्भव नहीं

---

१. 'पद्मिनी चरित्र चौपाई'—पृ० १७ (प्रका० सार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर) वि० सं० २०१८

माना जा सकता और यही कारण है कि राजस्थान के किसी भी पुराने शास्त्र-संग्रह में इसकी कोई लिखित प्रति ज्ञात नहीं है। जैन विद्वान् यति जो उस समय दिल्ली, पंजाब, बिहार और बंगाल आदि के पूर्व और उत्तर प्रदेशों में भी यथेष्ट विचरण करते रहते थे और साहित्य का संकलन, आकलन आदि निरन्तर करते रहते थे, यदि उनकी जानकारी में जायसी की यह रचना आती तो वे अवश्य इसकी प्रतिलिपि आदि कर लेते। क्योंकि यह रचना केवल अन्यान्य मुसलमान कवियों द्वारा रची गई सामान्य लोक-कथा के स्वरूप की नहीं है अपितु यह तो राजस्थान के इतिहास की एक विशिष्ट कथा है, जो जैन यति-जनों और कवियों के लिए प्रिय और स्वीय वस्तु है।

अतः हेमरत्न को जायसी की पद्मावत की कोई जानकारी नहीं थी। हेमरत्न ने राजस्थान में परापूर्व से लोक-विश्रुत कथा-बोजकों के आधार पर अपनी यह स्वतंत्र रचना की है। कवि स्पष्ट कहता है कि 'सुणिउ तिसउ भाष्यउ संबंधि' अर्थात् मैंने जैसा सुना है वैसा संबंध यहाँ कहा है। यदि जायसी की कथा उसकी कथा का आधार होती तो वह कह देता कि 'मैंने पूर्व-रचित या ग्रथित कथा के आधार से यह रचना की है।' उक्त लब्धोदय कवि ने जिसने वि० सं० १७०७ में 'पद्मिनी चरित्र चउपई' उदयपुर में बनाई है उसने स्पष्ट अपनी रचना के प्रारंभ में कहा है कि, मैं यह कथा "कल्लोल पूर्वक पूर्व-कथा को देख कर कहूंगा"—"कहिस्युं कवित्त कल्लोल सुं पूर्व कथा संपेख"।

जायसी ने अपनी रचना को बड़ी आडंबर वाली और अनेक कथाओं का एक जाल सा बना दिया है। उसके कथाजाल का हेमरत्न की कथा में किंचित् भी आभास नहीं है। हेमरत्न की कथा सीधी घटना-वर्णनात्मक है। इसमें राजा रतनसेन और अलाउद्दीन के सिंघल जाने का जो वर्णन है वह कुछ असंबद्ध और अनैतिहासिक-सा अवश्य लग रहा है, बाकी सारा वर्णन सुसंबद्ध और ऐतिहासिक स्वरूप का है। कवि प्रारम्भ में ही कहता है कि 'मैं सच्ची कथा कहूंगा और उसमें कोई खोड़ अर्थात् असत्य नहीं होगा'—'केळवस्युं साची कथा, कांणि न आवइ कांइ।"

बीकानेर से प्रकाशित लब्धोदय के "पद्मिनी चरित" में उसके संपादक श्री भंवरलालजी नाहटा ने किसी मल्ल कवि रचित "गोरा बादल कवित्त" नामक प्राचीन कवित्तों की संग्रहात्मक एक रचना भी प्रकाशित की है। यह 'गोरा-बादल कवित्त-संग्रह' अवश्य ही हेमरत्न से प्राचीन है क्योंकि इनमें से कई कवित्त हेम-रत्न ने अपनी रचना में उद्धृत किए हैं। अतः स्वतः सिद्ध है कि हेमरत्न से पूर्व ये कवित्त सुप्रसिद्ध थे। इन कवित्तों की रचना के समय का कोई ज्ञापक निर्देश

नहीं मिला, तथापि इनकी भाषा व रचना-शैली से इतना तो ज्ञात होता है कि ये जायसी के समय से तो पूर्ववर्ती अवश्य हैं। ये कवित्त मुख्य करके गोरा बादल की वीरता की प्रशंसा में रचे गए हैं। इनके अतिरिक्त भी हेमरत्न ने प्रसंगोचित कई अन्य प्राचीन कवित्त उद्धृत किये हैं जो उक्त संग्रह में नहीं हैं। इससे यह भी निश्चित होता है कि हेमरत्न से पहले भी ऐसी कई फुटकर कवित्तादि रचनाएं विद्यमान थीं जो पद्मिनी की कथा से सम्बन्धित थी। हेमरत्न ने इन रचनाओं को अच्छी तरह देखा है और उसने यथाप्रसंग इनका आधार अपनी रचना में लिया है। इन उद्धृत कवित्त छन्दों में से कई तो भाषा की दृष्टि से भी बहुत प्राचीन मालूम देते हैं और उनके अनेक पाठभेद भी मिलते हैं, अतः उनका प्रचार बहुत समय से हो रहा था, यह भी स्पष्टतया सिद्ध होता है।

इस प्रकार हेमरत्न की प्रस्तुत चउपई के अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पद्मिनी की मूल कथा राजस्थान में जायसी के पहले बहुत समय से प्रचलित थी। इससे यह कल्पना कि जायसी ने ही सबसे पहले पद्मिनी की कल्पित कथा का सृजन किया, सर्वथा निर्मूल सिद्ध होती है।

हमारे विचार से टॉड द्वारा भाट, चारणों से सुनी बातों पर भीमसी को पद्मिनी का पति लिखने आदि का कारण उसको विशेष प्रामाणिक आधारों का न मिलना ही है। भाटों की बातों के आधार पर पद्मिनी के पति के नाम का तथा ऐतिहासिक तथ्यों का मेल मिलाना संगत नहीं है। यदि कर्नल टॉड को हेमरत्न की इस राजस्थानी रचना का ज्ञान होता तो वह भीमसी का नाम कदापि न लिखता।

इस कथा में वर्णित राघवचेतन भी एक ऐतिहासिक व्यक्ति था। वह एक तांत्रिक व बड़ा अफण्डी ब्राह्मण था। अपनी तंत्र-विद्या से उसने देवगिरि के राजा रामदेव, चित्तौड़ के राजा रतनसेन और दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन तक को आकृष्ट कर लिया हो तो कोई ऐसी आश्चर्य की बात नहीं है। इसका उल्लेख केवल पद्मिनी की कथा में ही नहीं मिलता अपितु अन्यान्य प्रसंगो में भी मिलता है। देवगिरि से संबद्ध छिताई की वार्ता में भी वह, पद्मिनी की वार्ता की तरह, विशेष रूप में वर्णित है। तदुपरान्त उसकी जादूगीरी को लक्ष्य कर जैन ऐतिहासिक प्रबन्धों में भी उसका उल्लेख हुआ है। जैनाचार्य जिनप्रभसूरि अलाउद्दीन के दरबार में गये थे। वहाँ पर वह जिनप्रभसूरि के साथ तंत्र विद्या के प्रभाव का प्रदर्शन करता हुआ बताया गया है। जिनप्रभसूरि बड़े विद्वान् व प्रभावशाली पुरुष थे। अलाउद्दीन व उसकी गद्दी पर बैठने वाले महमूद तुग़लक के दरबार में वे उपस्थित हुए थे। उनके शिष्यों में से

किसी ने उनका जीवन-प्रबन्ध प्राकृत-भाषा में लिखा है।[1] उस प्रबन्ध में राघव-चेतन की जादूगीरी का उल्लेख किया गया है। इसी तरह कुछ दिगम्बर जैन सम्प्रदाय की पट्टावलियों में भी इसका उल्लेख मिलता है। ये उल्लेख भिन्न-भिन्न प्रसंगों का वर्णन करने वाले हैं। अतः उसका अलाउद्दीन का समकालीन होना सिद्ध होता है और वह ऐसे कामों के लिये देश में मशहूर हो रहा था, यह भी उसके उक्त प्रकार के उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है। राघवचेतन विद्वान् था और उसके रचे हुए कुछ प्राचीन संस्कृत पद्य भी हमें पाटन के जैन-ग्रन्थ-भण्डार में प्राप्त हुए थे।

गोरा बादल वीर राजस्थान के जन-मानस में आज भी सुप्रतिष्ठित हैं। चित्तौड़ में उनके स्मारक, प्राचीन स्थान आज भी विद्यमान हैं। इसलिये गोरा बादल कल्पित पात्र नहीं वरन् पद्मिनी के सतीत्व व स्वमान के रक्षक, उस समय के चित्तौड़ के सर्वोत्तम वीर पुरुष थे। उनकी वीरता और स्वामिभक्ति का गान करने वाले अनेक प्राचीन कवित्त राजस्थानी कवि गाया करते थे, यह हमने ऊपर सूचित किया ही है।

इस प्रकार हेमरत्न की कथा के मुख्य पात्र रतनसेन, पद्मिनी, राघवचेतन और गोरा बादल सर्वथा ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। चित्तौड़ पर अलाउद्दीन ने आक्रमण किया था और उसने सन् १३०३ ईस्वी (वि० सं० १३६०) में चित्तौड़ दुर्ग को नष्ट किया यह तो उसके स्वयं के इतिहास-लेखक कह रहे हैं। चित्तौड़ में उस समय गुहिलोतवंशीय राजा रतनसिंह राज्य कर रहा था, यह उसके वि० सं० १३५९ के मिले शिलालेख से सिद्ध है।[2] अलाउद्दीन को चित्तौड़ की लड़ाई में बड़ी हानि उठानी पड़ी, यह उसी का एक इतिहास-लेखक बर्नी कहता है। चित्तौड़ पर अलाउद्दीन ने चढ़ाई किसी विशेष उद्देश्य से की थी पर उसमें वह सफल नहीं हुआ, ऐसा अमीर खुसरो के ही एक अस्पष्ट उल्लेख से सूचित होता है।

जहाँ तक हेमरत्न की पद्मिनी की कथा का सम्बन्ध है वह इस प्रकार प्राचीन उल्लेखों द्वारा प्रमाणित होती है; परन्तु, यह एक आश्चर्य-सा लगता है कि हेमरत्न आदि राजस्थानी कवियों ने पद्मिनी के जीवन के अन्तिम रहस्य के बारे में क्यों कुछ नहीं लिखा? ये राजस्थानी लेखक पद्मिनी की कथा को सुखान्त रूप में ही समाप्त कर देते हैं, परंतु वे कथा के उस अन्तिम अंश के बारे में

---

१. देखिए—सिंघी जैन ग्रन्थ माला में प्रकाशित ग्रन्थाङ्क ४ खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावलि, पृ. ६४-६६।
२. देखिए—गो.ही. ओझा कृत 'उदयपुर राज्य का इतिहास' (दूसरा खण्ड); पृ. ४६५-६६

सर्वथा क्यों मौन हैं, जो जायसी ने लिखा है ? राजस्थानी लेखकों की कथा का अन्त इस तरह हो जाता है कि—अलाउद्दीन अपने दुष्ट इरादे को बलपूर्वक सिद्ध करने में सफल नहीं होता है तो वह छल प्रयोग करके राजा रतनसेन को बन्दी बना लेता है और उसको पद्मिनी सौंप देने के लिये विवश करता है। पर, पद्मिनी के आदेशानुसार वीर गोरा और बादल अपनी वीरता भरी चातुरी से राजा रतनसेन को सुलतान की कैद से मुक्त करा लेते हैं। चौहान वीर गोरा तो उस संघर्ष में मारा जाता है और अलाउद्दीन परास्त होकर अपने सैन्य के साथ दिल्ली लौट जाता है। बादल राजा को चित्तौड़ के किले पर पुनः प्रतिष्ठित कर देता है जिसके लिये रानी पद्मिनी बादल के प्रति अपनी अनन्य कृतज्ञता प्रकट करती है और उसका जय जयकार करती है। बादल की माता-सी गोरा वीर की पत्नी अपने पति से मिलने की इच्छा से अग्निशरण हो स्वर्ग में चली जाती है।

जायसी की कथा इससे कुछ आगे की घटना वर्णित करती है-उसके अनुसार, राजा रतनसेन ने, सुलतान की कैद से मुक्त होकर चित्तौड़ पहुँच जाने के बाद, रानी पद्मिनी से कुंभलगढ़ के ठाकुर देवपाल की दुष्ट चेष्टा का हाल सुना तो वह उसको ठीक करने के लिये उस पर चढ़ाई कर देता है। उसमें उसको शत्रु के शस्त्र का विषम प्रहार लगता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। रानी पद्मिनी उसके साथ सती हो जाती है। राजस्थानी लेखक इसका कुछ भी सूचन नहीं करते।

कर्नल टॉड ने राजस्थान के इतिहास में पद्मिनी की कथा राजस्थान के भाटों के मुख से सुन कर लिखी है जो प्रायः हेमरत्न की कथा से मिलती-जुलती है। पर उसने कथा का अन्त इस प्रकार बताया कि-रतनसेन के सुलतान की कैद से छूट कर वापस चित्तौड़ पहुँच जाने पर, अलाउद्दीन फिर उस पर बड़े जोर-शोर के साथ दुबारा आक्रमण करता है। उसमें चितौड़ के राजपूतों ने जब देखा कि अबकी बार हमारा विजयी होना संभव नहीं है तो पद्मिनी आदि स्त्रियों को जौहर के रूप में अग्नि-शरण कर स्वयं केशरिया करके मैदान में उतर पड़े। क़िला दुश्मन के हाथ में आ गया और वहां पर अलाउद्दीन ने अपना झंडा फहरा दिया।

अकबर-कालीन फरिश्ता और अबुल फ़जल आदि मुसलमान लेखकों ने भी पद्मिनी की कथा को सुनी-सुनाई बातों के आधार पर इसी प्रकार की कुछ अस्त-व्यस्त घटनाओं से आलेखित किया है।

इन सब कथाओं में सबसे अधिक संगत और विश्वास करने लायक हेमरत्न

की प्रस्तुत रचना ही प्रतीत होती है। इसकी रचना में जितने आधारभूत मूल स्रोत हेमरत्न को ज्ञात हुए उतने अन्य किसी को नहीं। शायद पद्मिनी के अन्त के बारे में उसको कोई विश्वसनीय आधार ज्ञात नहीं हुआ, इसलिए उसने इसका कोई सूचन नहीं किया और अपनी कथा को राजा रतनसेन की मुक्ति के साथ ही सुखान्त रूप में समाप्त कर दिया।

हेमरत्न की कथा में जो असंगत-सी बात लगती है वह पद्मिनी की सिंघल देश की राजकन्या होने की है। सिंघल की अत्यंत रूपवती राजकन्याओं की अनेक कथाएं हमारे प्राचीन साहित्य में मिलती हैं, इसलिए शायद पद्मिनी जैसी अलौकिक रूपवती स्त्री का पीहर भी कथाकारों ने सिंघल समझ लिया हो और उसी का प्रचार कर दिया हो। हमारे राजस्थान के महान् इतिहासकार स्वर्गीय ओझाजी ने इसके लिए यह कल्पना प्रस्तुत की है कि सिंघल जैसे अति-दूर प्रदेश में जाकर राजा रतनसेन उसे व्याह कर ले आया, यह तो किसी तरह संभव नहीं हो सकता। संभव है कि मेवाड़ के सिंगोली जैसे स्थान की वह राजपूत कन्या हो और भाटों आदि ने उस शब्द-साम्य का सहारा लेकर उसे सिंहल की राजकन्या बना दी हो।

यद्यपि हमारे पास कोई आधार नहीं है तथापि हमारी कल्पना है कि पद्मिनी सिंघल की नहीं परन्तु सिंधल अर्थात् प्रसिद्ध सिंध प्रदेश के किसी राजपूत की कन्या होगी। सिंधल की स्त्रियों के रूप-लावण्य का वर्णन राजस्थान के पिछले कवियों ने खूब किया है और सिंधल की रूपवती स्त्रियाँ राजस्थान के स्त्री-वर्ग के सौंदर्य की प्रतीक बताई गई है। कवि बांकीदास ने इस पर एक व्यंग्य वाक्य भी कहा है कि—एक पद्मिनी के लिए राजा रतन व्यर्थ ही सिंघल गया वैसी पद्मिनियां तो इस सिंधल प्रदेश में घर-घर में हैं। इसी सिंध प्रदेश में से रतनसेन पद्मिनी व्याह कर ले गया हो और सिंधल अर्थात सिंध के स्थान पर सिंघल शब्द का मेल मिलाकर कवियों ने अतिशयोक्ति के रूप में उसे सिंहल की राजकुमारी कह दिया हो। ऐसी अनेक सुप्रसिद्ध सामान्य ऐतिहासिक घटनाओं को भी कवियों ने अतिशयोक्ति द्वारा ऐसी चित्रित की हैं कि जिससे उनका ऐतिह्य स्वरूप संदेह में पड़ गया है।

कर्नल टॉड ने सिंघल के राजा और पद्मिनी के पिता का नाम हमीरसिंह लिखा है और उसे चौहान वंशीय कहा है। सिंहल अर्थात् लंका में चौहान राजा का होना सर्वथा असंभव है। हमीरसिंह नाम भी शुद्ध राजस्थानीय है। इसलिए यदि इस उल्लेख के पीछे कुछ भी तथ्य हो तो वह सिंहल की जगह

सिंधल मान लेने से सार्थक हो सकता है और पद्मिनी की प्रारम्भ की सारी कथा भी संभवित और संगत बन सकती है।

चित्तौड़ के इस आक्रमण के बारे में हमारे पास अन्य कोई प्राचीन उल्लेख नहीं है। अलाउद्दीन की फौज ने गुजरात पर आक्रमण किया तो वह मेवाड़ प्रदेश में होकर गुजरी। उस समय समरसिंह मेवाड़ का स्वामी था। वि० सं० १३५६ में यह घटना हुई। समरसिंह ने कुछ दंड देकर अपने देश की रक्षा की, यह उल्लेख जिनप्रभसूरि ने "विविध-तीर्थ-कल्प" नामक ग्रन्थ में किया है जो समकालीन ऐतिहासिक प्रमाण है। समरसिंह की गद्दी पर रत्नसिंह बैठा जिसका लेख वि० सं० १३५६ का मिलता है, बाद का कुछ भी उल्लेख उसके बारे में नहीं मिला। उक्त जिनप्रभसूरि के समान ही एक विद्वान् कक्कसूरि नामक हुए, जो अलाउद्दीन के समकालीन और उसके शासनकाल से सुपरिचित थे। पाटण के प्रसिद्ध धनाढ्य और देश-प्रतिष्ठित समरासाह के वे निजी धर्मगुरु थे। समरासाह उलुगखान और अलाउद्दीन के निकट संपर्क में आया था, इससे कक्कसूरि अलाउद्दीन के सब कारनामों से सुपरिचित थे। उलुगखान ने पाटण पर चढ़ाई कर उसको जब नष्ट किया तब समरासाह वहां के एक विशेष प्रतिष्ठित महाजन के रूप में विद्यमान था। वह अलाउद्दीन के देवगिरि के आक्रमण का भी प्रत्यक्षदर्शी व्यक्ति था। कक्कसूरि उसके निजी धर्मगुरु होने के नाते तथा पाटण में उनका विशेष निवास रहने के नाते उस समय की देश की सारी घटनाओं के पूर्ण ज्ञाता थे। उन्होंने अपनी उत्तरावस्था में संवत् १३९३ में 'नाभिनन्दनोद्धार-प्रबन्ध' नामक एक संस्कृत ग्रन्थ की रचना राजस्थान के कांजरकोट नामक स्थान पर की, जिसमें समरासाह के प्रभाव और धर्मकार्यों का विस्तृत वर्णन किया है। इस प्रबन्ध में उन्होंने प्रसंगवश अलाउद्दीन के आक्रमणों और विषयों का वर्णन करते हुए नीचे का श्लोक लिखा है—

श्रीचित्रकूटदुर्गेशं बद्ध्वा लात्वा च तद्धनम्।
कण्ठबद्धं कपिमिवाभ्रामयत् पुरे पुरे॥

अर्थात्, इस अलाउद्दीन ने चित्रकूट के राजा का धन लूट कर और उसे बंदी बना कर, बंदर की तरह गांव-गांव घुमाया।

कक्कसूरि उपर्युक्त कथनानुसार अलाउद्दीन का समकालीन और उसके द्वारा की गई सारे देश की दुर्दशा का प्रत्यक्षदर्शी ज्ञाता है। देवगिरि, रणथम्भोर, पाटण, मांडव, जालोर आदि स्थानों पर उस समय जो क्रूर आक्रमण हुए, उन सबका उसको ठीक-ठीक ज्ञान है। अतः चित्तौड़ के राजा के बारे में जो बात उसने लिखी है उसके सही होने में कोई संदेह नहीं है। राजा रतनसेन को पकड़ कर

अलाउद्दीन ने कैद में डाल दिया था, यह तो सभी कथाकार स्वीकार करते हैं, परंतु उसको कैदी की हालत में नगर-नगर बंदर की तरह घुमाया गया था, ऐसा जो कक्कसूरि का कथन है, उसकी संगति कैसे हो सकती है ? यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है। हेमरत्न के कथनानुसार तो राजा को कैद करके अलाउद्दीन ने चित्तौड़ में ही अपने सैन्य के कब्जे में रखा था और वहीं से गोरा-बादल ने अपनी बुद्धि-चातुरी के प्रयोग से उसको छुड़ा कर वापस चित्तौड़ के किले में पहुंचा दिया था। ऐसी स्थिति में उस राजा को गांव-गांव में बन्दर की तरह घुमाने वाली बात की संगति नहीं बैठती है। हो सकता है कि बादशाह ने राजा को बहुत परेशान करने के लिये और उसके प्रजाजनों को त्रस्त करने के लिये कैदी के रूप में उसे चित्तौड़ और उसके आसपास के गांवों में घुमाया-फिराया हो।

जायसी ने अपने 'पदमावत' में लिखा है कि बादशाह राजा को कैद करके अपने साथ दिल्ली ले गया था और फिर गोरा-बादल दिल्ली जा कर उसे कैद से छुड़ा लाये थे। यदि यह बात ठीक हो तो उक्त कक्कसूरि वाला कथन और भी अधिक वास्तविक ठहर सकता है।

उस जमाने में विजेता लोग, अपने पराजित शत्रु राजा आदि को इसी प्रकार कैदी बना कर, अपने पराक्रम का प्रदर्शन करने के निमित्त, नगरों और गांवों आदि में घुमाया करते थे, जिसके अनेक उदाहरण इतिहास के ग्रन्थों में मिलते हैं।

कवि हेमरत्न और जायसी के कथनों में से हमको हेमरत्न का कथन अधिक संगत लगता है। रत्नसिंह को बादशाह कैद कर दिल्ली ले गया और फिर उसे वहां से गोरा-बादल अपनी चातुरी द्वारा कैद से छुड़ा कर चित्तौड़ ले आये, यह बात तो असंभव सी लगती है। अतः कक्कसूरि के उक्त कथन का तात्पर्य यही हो सकता है कि बादशाह ने रतनसिंह को कैदी के रूप में चित्तौड़ और उसके आस-पास के गांवों में घुमाया-फिराया होगा। रतनसिंह का आखिर क्या हुआ, यह बात बतलाने का कक्कसूरि का उद्देश्य नहीं है। वह तो सिर्फ अलाउद्दीन ने उस समय इस देश में अपना क्रूर आतंक फैलाने के लिये क्या-क्या दुष्कृत्य किये और किन-किन बड़े-बड़े हिन्दु राज्यों को उसने नष्ट किया, यही बात सूचित करना चाहते हैं।

कक्कसूरि ने अपना वह ग्रन्थ-प्रबन्ध उक्त घटनाओं के बाद कोई ३०-३५ वर्ष अनन्तर बनाया था। उन्होंने उक्त प्रबन्ध की रचना वि. सं. १३९२ में समाप्त की थी। शायद वे उस समय काफी वृद्ध रहे होंगे। उनको यह ज्ञात हो

गया होगा कि वह दुष्ट अलाउद्दीन कोई २० वर्ष पहले ही दिल्ली में उसी के एक बेवफ़ा गुलाम सरदार द्वारा ज़हर के प्रयोग से मारा जा चुका है। उसकी दानवी लीलाओं का बुरी तरह अन्त हो चुका है, उसके वैभवशाली हरमों में अनेक पैशाचिक काण्ड घट चुके हैं, उसकी कइ बीवियाँ और बेटियां कैदखानों में पड़ी-पड़ी सड़ मर चुकी हैं और उसके शाहज़ादे कहलाने वाले बेटों में से किसी को अन्धा बना दिया गया है और किसी को तलवार की तीक्ष्ण धार से कत्ल कर दिया गया है। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ के महान् राजसिंहासन को नष्ट-भ्रष्ट करके वहां पर अपने बेटे शाहजादे खिज्रखां की तख्तनशीनी की थी और इस खिज्रखां के शासन-काल के दरमियान चित्तौड़ में एक मकबरा बनाया गया था और उसमें एक शिलालेख लगा कर यह लिखा गया था कि 'बुल मुज़फ़्फ़र मुहम्मदशाह सिकन्दर सानी (दूसरा सिकंदर) अर्थात् अलाउद्दीन खिलजी जो दुनिया का बादशाह, अपने समय का सूर्य, ईश्वर का तेज है और दुनिया का रक्षक है, वह जब तक काबा (मक्का का पवित्र स्थान) दुनिया के लिये किब्ला (गौरवयुक्त) बना रहे, तब तक इसका राज्य मनुष्य मात्र पर चलता रहे।'[1]

इस लेख का बनवाने वाला वह खिज्रखां भी थोड़े ही समय बाद दुनिया के रक्षक कहलाने वाले उसी बाप के हुक्म से ग्वालियर के किले में कैदी बन कर, वर्षों पड़ा-पड़ा सड़ चुका था और अन्त में कत्ल कर दिया गया था।

अलाउद्दीन के मरते ही उसके नापाक तख्त पर एक के बाद एक कई बच्चे-बूढे ऐरे-गेरे बादशाह बन कर बैठते गये या बैठाये गये और वे अपनी जानें खोते गये। इस प्रकार अलाउद्दीन का वह दानवीय साम्राज्य, जिसके प्रारंभकालीन क्रूर आतङ्क का मर्मान्तिक उल्लेख कक्कसूरि ने किया है वह, उनके जीवित-काल में ही ध्वस्त हो चुका था; उसके राज्य और वंश का पूर्ण रूप से विनाश हो चुका था।

❀

इधर चित्तौड़ के बचे-खुचे वीर राजपूत अलाउद्दीन के बैठाये गये शासकों को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करने लग गये थे। पद्मिनी जैसी अनेक पूतात्मा-सती नारियों के पवित्र भस्मपुञ्जों से परिपुष्ट और लक्ष्मसी, गोरा-बादल, रत्नसिंह आदि अनेक देवांशी नरवीरों की दिव्य रक्तधाराओं से परिपुष्ट एवं अभिसिंचित चित्तौड़ महादुर्ग की वीरप्रसू पुण्यभूमि में दिन-प्रतिदिन अनेकानेक नूतन सपूत वीर पैदा हो रहे थे। भड लक्ष्मणसिंह और रत्नसिंह के कुल में इस दारुण प्रसंग से पहले ही एक अवतारी महावीर जन्म ले चुका था, जो शायद

---

१. ओझाजी-कृत 'राजपूताने का इतिहास' भाग पहला पृ. ४९७।

चित्तौड़ पर के आक्रमण के समय १०-१२ वर्ष जितनी किशोर वय वाला रहा होगा। वह राणाओं की मूल जागीर सीसोदे का स्वामी बना। चित्तौड़ में जब अलाउद्दीन का बेटा खिज्रखां शासन कर रहा था तब युवा राणा हमीर ने अपने आस-पास के राजपूतों को एकत्र करना शुरू किया और चित्तौड़ से मुसलमानों को मार निकालने का बलवान प्रयत्न करने लगा। अवसर पा कर उसने चित्तौड़ की तरफ आने वाले रास्तों पर अपनी चौकियां बैठा दीं और इस प्रकार मुसलमानों को मिलने वाली सब प्रकार की सामग्री के आने के मार्ग बन्द कर दिये। किले पर पड़े हुए बादशाही सैनिकों की दुर्दशा होने लगी, तब बादशाह ने अपने बेटे खिज्रखां को किला खाली कर लौट आने का हुक्म भेजा और अपने हिन्दु राजपूत सामंत सोनगिरा मालदेव को वह किला और उसके आस-पास का प्रदेश जागीर के रूप में दे दिया। परंतु, वीर हमीर को अपनी पैतृकभूमि पर किसी दूसरे वंश का अधिकार सह्य नहीं था इस लिये उसने छल-बल के प्रयोगों द्वारा सोनगरे मालदेव से आखिर में चित्तौड़ छीन कर बड़े गौरव के साथ, अपने पूर्वजों के राजसिंहासन की वहां पुनः प्रतिष्ठा की।

अलाउद्दीन सं० १३७३-७४ में मर गया। उसकी मृत्यु के बाद, ८-१० वर्षों के भीतर ही, उपर्युक्त कथनानुसार, उसके नापाक तख्त पर ४-५ बादशाह बैठ चुके थे। दिल्ली की इस दुर्दशा वाले समय का सुअवसर पाकर हमीर ने अपने पूर्वजों की पुण्यभूमि को दुष्ट म्लेच्छों के दूषित हाथों से मुक्त कर लिया। वि० सं० १३८२-८३ का यह प्रसंग था। अलाउद्दीन को मरे केवल १०-११ वर्ष ही बीते थे। इस प्रकार महाराणा हमीर के यौवन के मध्याह्नकालीन प्रतापी सूर्य ने अपना प्रखर ताप चारों तरफ फैलाना शुरू कर दिया। चित्तौड़ के राज-प्रासादों और देव-मन्दिरों पर पुनः सुवर्ण-कलश चमकने लगे, ध्वजादंडों पर रेशमी चीरकी रंग-बिरंगी ध्वजायें लहराने लगीं; घंटानादों से चित्तौड़ का आकाश गूँजने लगा; चित्तौड़ पर आई हुई उस प्रलयकालीन आंधी का तूफान शान्त हो गया; चित्तौड़-राजवंश के उद्धारक हमीर का सर्वत्र गुणगान और जय-जय-कार सुनाई देने लगा।

हमीर ने चित्तौड़ में अपने गौरवशाली गुहिलोत राजवंश की वैसी सुदृढ प्रतिष्ठा की जो उसके पहले उतनी कभी नहीं थी। अलाउद्दीन के भयंकर आक्रमणों के कारण भारत के सभी प्राचीन राजवंश ध्वस्त हो गये थे। सारी हिन्दु जाति अपनी संस्कृति और समृद्धि के सर्वनाश को हताश हो कर देख रही थी और मन ही मन अपने दुर्दैव को कोस रही थी। वे अपने इष्ट देवी-देवताओं

को, इस संकटकाल में रक्षा न करने के कारण, उपालंभ दे रहे थे और उनकी प्रतिमाओं को भूगर्भों में दाट रहे थे ।

हिन्दु-जाति के ऐसे अभूतपूर्व और अकल्पित संकट के समय में हमीर का दैवी अवतार हुआ । उसके पराक्रम और पौरुष-पूर्ण साहस से समग्र हिन्दु-जाति के निस्तेज जीवन में पुनः नूतन आशा का आविर्भाव हुआ । उसने चित्तौड़ की उस वीर-भूमि में अपने ऐसे सुदृढ वंशवृक्ष की स्थापना की जो उसके बाद खूब फला फूला और सैंकड़ों वर्षों तक वह अपनी सुछाया से सारी हिन्दु-जाति का आश्रयभूत बना रहा । हमीर के वंशजों में एक-से-एक बढ़ कर ऐसे वीर नर उत्पन्न होते गये जिन्होंने सैंकड़ों वर्षों तक भारत के गौरव की रक्षा का पद एवं सर्वाधिक सम्मान प्राप्त किया । सारी राजपूत जाति के मुकुट कहलाने का पद एकमात्र इस वंश को मिला । 'हिन्दुआणां सूरज', यह इस वंश को वैसा ही दूसरा अद्वितीय विरुद प्राप्त हुआ । राणा कुम्भा, सांगा, प्रताप, अमर और राजसिंह जैसे इस वंश में सर्वश्रेष्ठ राजपुरुष उत्पन्न हुए, जिन्होंने समय-समय पर अपने राष्ट्र, धर्म और स्वाभिमान की रक्षा के लिये सर्वस्व का त्याग करने वाले अद्‌भुत वलिदान दिये ।

वीर हमीर द्वारा चित्तौड़ में पुनः प्रतिष्ठित गुहिलोत-वंशीयों का भारत-पूजित राजसिंहासन आज भी वैसा ही आराध्य रूप में विराजमान है । इस सिंहासन से अधिष्ठित राज-मन्दिर में वह दिव्य दीपक-ज्योति आज भी वैसी ही अखण्ड रूप में जल रही है जो इस वंश के आदि-प्रतिष्ठाता राजा गुहिल ने कोई १५०० वर्ष पहले मेवाड़ की पुण्य तीर्थ-भूमि में प्रज्ज्वलित की थी ।

देवी-स्वरूपा पद्मिनी की पवित्र आत्मज्योति का नाश करने की इच्छा करने वाले उस दानव के दुष्ट साम्राज्य का और वंश का उसके देखते-देखते विनाश होना शुरू हो गया था । तब उस देवी के सतीत्व की रक्षा के निमित्त प्राणों की आहुति देकर एवं अपने गौरवशाली राज्य के नाश की परवाह न करने वाले लक्ष्मणसिंह और रत्नसिंह के सपूतों ने ऐसे दैवी राज्य की सुदृढ़ नींव डाली जो संसार का एक सबसे अधिक सम्मानित राजवंश बना । मेवाड़ के राजवंश का यह मुद्रा-लेख सर्वथा सत्य सिद्ध हुआ कि–

'जो दृढ़ राखे धर्म को तिहि राखे करतार ।'

———

परिशिष्ट

रत्नसिंह की समस्या

पद्मिनी के पति और चित्तौड़ के राजा रत्नसिंह के विषय में इतिहासकारों के लिये एक समस्या बनी हुई है। इस विषय में कुछ निर्देश हमने अपने पर्यालोचन वाले लेख में ऊपर किया ही है। मेवाड़ के प्राचीन इतिहासविषयक नये-पुराने उल्लेखों और प्रमाणों में रत्नसिंह के बारे में कुछ भ्रान्ति-जनक बातें लिखी मिलती हैं और इसलिये कुछ अतिचिकित्सक विद्वान् यह मान रहे हैं कि चित्तौड़ की रानी पद्मावती और राजा रत्नसी या रत्नसेन-विषयक जो कथा-कहानियां हैं, वे सर्वथा कल्पित हैं। इतिहास-विषयक प्रमाणों में परस्पर ऐसी असंगत और भ्रान्तिजनक बातों के देखने पर इतिहासविदों के ऐसे भ्रमात्मक मत बन जाना भी स्वाभाविक ही हैं।

जैसा कि हमने उक्त लेख में सूचित किया है, रत्नसिंह के बारे में इतना तो निश्चित प्रमाण उपलब्ध है ही कि वह अलाउद्दीन के आक्रमण के समय चित्तौड़ का स्वामी था। उसके राज्यकाल का सूचक सं० १३५९ का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, अतः वह उस समय मेवाड़ का राजा था, इसमें किसी बात के सन्देह का अवकाश नहीं है। उसके दूसरे ही वर्ष अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया था, यह बात उस बादशाह के दरबारी लेखकों ने स्वयं लिखी है, इसलिये इसमें भी किसी प्रकार की शंका को स्थान नहीं है। पर, यह रत्नसिंह कौन था और चित्तौड़ के जिस राजा समरसिंह रावल की गद्दी पर वह बैठा था उसके साथ इसका क्या संबंध था ? यह प्रश्न विचारणीय बना हुआ था।

मेवाड़ के गुहिलोत-वंशीय प्राचीन राजाओं के बारे में ऐतिहासिक साधन बहुत कम मिलते हैं। अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण के पहले के तथा उसके बाद के भी प्राचीन प्रमाणों का प्रायः अभाव ही है। जो कुछ बिखरे हुए और परस्पर विसंगत प्रमाण मिलते हैं उन पर से विद्वानों ने मेवाड़ के राजवंश के इतिहास का जो संकलन किया है उसमें भी कुछ परस्पर असंगतियां दिखाई देती हैं।

चित्तौड़ के राजवंश की वंशावली का कुछ क्रमिक आलेखन सबसे पहले महाराणा कुम्भा के समय में हुआ। उसने चित्तौड़ में कीर्तिस्तंभ बनवाया तब उसमें

लगाने के लिये बड़े-बड़े शिलालेख तैयार करवाये। इसी तरह कुम्भलमेर का नया किला बनवाया तब उसमें भी लगवाने के लिये बड़ी शिला-प्रशस्तियां तैयार करवाई। इन प्रशस्तियों में कुम्भा ने अपने पूर्वजों की नामावली देने का प्रयत्न किया है। मालूम देता है कि अलाउद्दीन के आक्रमण के समय चित्तौड़ राज्य का पुराना सरस्वती-भंडार सर्वथा नष्ट हो गया था, अतः उस समय के सब लिखित राजकीय ऐतिह्य-साधन नष्ट हो गये। कहीं-कहीं केवल जो कुछ शिलालेख वगैरह लगे हुए थे, वे ही किसी तरह बच रहे।

रावल रत्नसिंह जो अलाउद्दीन के आक्रमण के समय चित्तौड़ पर राज्य कर रहा था वह गुहिलोत वंश की उस प्राचीन शाखा का उत्तराधिकारी था जिस शाखा का अधिकार मेवाड़ के मुख्य राज्य-स्थान चित्तौड़ पर बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा था। यह शाखा मेवाड़ के इतिहास में रावलशाखा के नाम से प्रचलित थी। रत्नसिंह इस शाखा का अन्तिम राजा हुआ और उसकी मृत्यु के साथ ही इस शाखा का अन्त हो गया। गुहिलोत वंश की एक लघुशाखा जो कई पीढ़ियों से सीसोदा गांव की जागीर का उपभोग कर रही थी, उसके वंशधरों को राणा की उपाधि मिली हुई थी। मेवाड़ के राज्य में मुख्य राज-घराने के बाद दूसरा स्थान आज तक भी सोसोदे वालों का रहा है। रावल रत्नसिंह के पूर्वज समरसिंह, तेजसिंह आदि के समय में भी सीसोदे वाली शाखा का वही स्थान था। मेवाड़ राज्य की ख्यातों आदि में बताये मुजिब रत्नसिंह से पहले कोई ८-१० पीढ़ी पूर्व गुहिलोत वंश की ये दो प्रसिद्ध शाखायें प्रचलित हुई थीं।

रावल रत्नसिंह की मृत्यु के साथ जब चित्तौड़ का मूल शाखा वाला राज-वंश नष्ट हो गया तब सीसोदिया शाखा वाले प्रतापी वीर भड लक्ष्मणसिंह का पौत्र हमीर चित्तौड़ समेत समग्र मेवाड़-राज्य का स्वामी बना। हमीर ने अपने प्रबल पराक्रम द्वारा मेवाड़-राज्य की चित्तौड़ में पुनः स्थापना की और फिर उसके बाद उसी के वंशजों का मेवाड़ पर शासन चला जो वर्तमान समय तक चलता रहा। महाराणा कुम्भा, सांगा, प्रताप, राजसिंह वगैरह राजा उसी वंश में प्रसूत हैं। महाराणा कुम्भा ने उक्त रूप से जब अपने पूर्वज सार्वभौम-ऐसे मेवाड़ चित्तौड़ के राजाओं की नामावली तैयार करवाई तो उसमें हमीर से पहले होने वाले मेवाड़ाधिपति रत्नसिंह और उसके अव्यवहित पिता-प्रपिता समरसिंह आदि का नामोल्लेख करना भी अनिवार्य था। दूसरी तरफ हमीर के पिता-प्रपिता आदि वीरों के नामों का उल्लेख भी होना अनिवार्य था क्योंकि चित्तौड़ दुर्ग की रक्षा करने में उनका सर्वाग्रिम स्थान रहा था। इसलिये राणा कुम्भा

द्वारा तैयार करवाई वंशावलि में कुछ असंगति और अस्पष्टता दिखाई देती है; पर, यह होना अनिवार्य है क्योंकि उस समय आधुनिक काल की तरह विशिष्ट सामग्री जुटाना और उसकी छानबीन कर उसके निष्कर्ष-स्वरूप शुद्ध नामावली तैयार करना-कराना किसी के लिये भी संभव नहीं था। महाराणा कुम्भा के विद्वानों को जो बिखरी हुई सामग्री उपलब्ध हो सकी उसी के आधार पर उन्होंने उक्त प्रकार की वंश-नामावली आलेखित कर दी।

महाराणा कुम्भा के इन प्रशस्ति-लेखों में रत्नसिंह के केवल नाम का ही उल्लेख है। वह समरसिंह का उत्तराधिकारी और चित्तौड़ का स्वामी हुआ; बस, इतना ही लिखा गया है। उसके विषय में पद्मिनी वाले प्रसंग आदि से संबंध रखने वाली अन्य किसी बात का उल्लेख नहीं है। चित्तौड़ पर अलाउद्दीन द्वारा किये गये आक्रमण वाली घटना चित्तौड़ के राजवंश के इतिहास की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है। चित्तौड़ पर इसके पहले ऐसा आक्रमण किसी शत्रु द्वारा नहीं हुआ था और उस राज-वंश को वैसी भयंकर क्षति भी कभी नहीं पहुंची थी। परंतु, जैसा कि राजवंशों के गुणगान करने वाले कवियों, भाटों, चारणों आदि की परंपरागत प्रथा है कि वे अपने वर्ण्य राज-वंश या राजा आदि की स्तुतियों में पराजय-सूचक किसी बात का कभी उल्लेख नहीं करते और सत्य-असत्य—ऐसी छोटी-मोटी विजयों के बढ़ा-चढ़ा कर बड़े-बड़े काव्य और गीतादि बनाते रहते हैं, उसी प्रथा के कारण, मेवाड़ के राजवंश का गुणगान करने वाले कवियों आदि ने चित्तौड़ के उक्त दुःखद प्रसंग का किंचित् मात्र भी उल्लेख नहीं किया। पर, चित्तौड़ की इस दुर्घटना का ज्ञान तो देश में सर्वत्र फैला हुआ था और जनता में इसकी विविध प्रकार की किंवदन्तियां प्रचलित हो रही थीं। इसी प्रकार की सर्वजन-विश्रुत बात को लक्ष्य कर ही तत्कालीन कक्क सूरि ने, अपने उक्त नाभिनन्दनोद्धार-प्रबन्ध में, अलाउद्दीन द्वारा की गई चित्तौड़ के राजा की दुःखद दशा का संकेत किया है। मेवाड़ के इतिहास का यह एक बहुत बड़ा पराजय-सूचक प्रसंग था, अतः इसका उल्लेख मेवाड़ के कवियों द्वारा न किया जाना स्वाभाविक ही है। पर, मुसलमानों के लिए यह विजय की बात थी इसलिए वे इस बात को बारंबार अपने इतिहासों में लिखते रहे और प्रत्येक लेखक उसमें कुछ-न-कुछ अपनी शेखी भी बघारता रहा। अलाउद्दीन का दरबारी चापलूस लेखक अमीरखुसरो चित्तौड़ की लड़ाई में बादशाह के साथ था। उसने अपने मालिक की चित्तौड़-विजय की बांग तो बड़े बड़े लच्छेदार शब्दों में पुकारी है, परन्तु जिस दुराशा से प्रेरित होकर अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर वह आक्रमण किया था और उसमें उसको जो सैनिक दृष्टि

से अपार हानि उठानी पड़ी थी तथा पद्मिनी की प्राप्ति में सर्वथा निष्फलता प्राप्त कर हताश होकर उसे खाली हाथ वापस लौटना पड़ा था, उसका किंचित् भी आभास अमीरखुसरो के उल्लेख में नहीं मिलता। न वह पद्मिनी का नामोल्लेख करता है, न राजा का नाम ही लिखता है। वह कुछ ऐसे गोलमाल शब्दों में इस प्रसंग का वर्णन करता है जिसका अर्थ स्पष्ट करने के लिए कुछ विद्वानों को इधर-उधर के अन्य प्रमाणों को टटोलना पड़ रहा है। इसी तरह उसके साथी वर्नी और इसामी ने भी कुछ गोल-मोल बातें लिखी हैं। अलाउद्दीन चित्तौड़ पर आक्रमण करने के अपने मूल उद्देश्य में सफल नहीं हुआ बल्कि निराश और हताश होकर ही वह वापस लौटा था। इसलिए इन लेखकों द्वारा पद्मिनी की बात का किंचित् भी उल्लेख न किया जाना सर्वथा स्वाभाविक था।

इधर पद्मिनी के प्रसंग को लेकर किस तरह गोरा-बादल—जैसे वीरों ने उस युद्ध में शूरवीरता दिखलाई, इसकी कथा राजस्थान-निवासी जन-जन में विश्रुत हो रही थी और उस विषय के विविध प्रवादों के वर्णन करने वाले अनेक कविजन कवित्त-छप्पय आदि बना कर जनता को सुनाया करते थे। गोरा-बादल-कवित्त जैसी रचनायें इसी प्रकार की रचनाओं के अस्तित्व की द्योतक हैं। ऐसी रचनाओं के अधार पर ही जायसी ने अवधि भाषा में अपनी 'पदमावत' की बड़ी लंबी-चौड़ी रचना की और हेमरत्न आदि राजस्थानी कवियों ने गोरा-बादल-पद्मिनी-चौपाई आदि की रचनायें कीं।

अकबर-कालीन मुसलमान इतिहास-लेखकों को चित्तौड़ के उक्त प्रसंग का इतिहास लिखने का प्रसंग प्राप्त हुआ तो उन्होंने अपने पहले के मुसलमानी इतिहासों में अलाउद्दीन की चित्तौड़-विजय का जो वर्णन मिलता था उसे कमी-बेशी रूप में लिख डाला और जो कुछ उस विषय में जनप्रवाद द्वारा नई बातें जानने-सुनने में आई उन्हें भी साथ में जोड़ लिया।

अकबर-कालीन मुसलमानी इतिहास-लेखकों में फ़िरिस्ता एक बड़ा इतिहासकार माना जाता है। उसने अपनी 'तारीखे फ़िरिस्ता' नामक पुस्तक में अलाउद्दीन खिलजी के इतिहास का वर्णन करते हुए चित्तौड़ के आक्रमण का भी वर्णन लिखा है। इस वर्णन में कुछ बातें तो अमीरखुसरो, ज़ियाउद्दीन बर्नी और इसामी जैसे, अलाउद्दीन के समकालीन लेखकों के ग्रन्थों के आधार पर लिखी हैं और फिर पद्मिनी-विषयक सारा किस्सा, जो उन पुराने लेखकों के ग्रन्थों में तो नहीं मिलता परंतु राजस्थान के लोगों में सर्वविश्रुत और अति प्रचलित था इस कारण, उसको भी अपने इतिहास में लिख देना उसको आवश्यक प्रतीत हुआ। पर, मालूम देता है कि उसने यह कहानी किसी अनभिज्ञ व्यक्ति के मुख से सुन कर लिखी है, न कि किसी पुरानी पुस्तक या लेख के आधार पर।

फ़रिस्ता ने सुलतान अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण करने के वर्णन में लिखा है कि 'चित्तौड़ के राय रतनसेन की बेटी को प्राप्त करने के लिये उसने उस राजा को कपट करके पकड़ लिया और कैद में डाल कर उसे बहुत सताने लगा और उससे कहने लगा कि 'यदि तू अपनी बेटी मुझे दे दे तो मैं तुझे कैद से छोड़ सकता हूँ।' राजा ने दुःख से छुटकारा पाने के लिए बादशाह की मांग स्वीकार कर ली और वैसा करने के लिए उसने अपने राज्यरक्षकों को लिखा। राजा की कुमारी के बुद्धि-चातुर्य से वह कैद में से छुड़ा लिया गया और वापस अपने देश में पहुँच गया।' इत्यादि। इस वर्णन में फरिस्ता ने राजा का नाम तो लिखा है पर उसकी पुत्री का नाम नहीं लिखा। फरिस्ता का यह पूरा वर्णन इस प्रकार है—

"इस समय (हिजरी सन् ७०४) [ई० स० १३०४, तदनुसार वि० सं० १३६१] चित्तौड़ का राजा राय रतनसेन—जो सुलतान ने उसका किला छीना तब से कैद था—अद्भुत रीति से भाग गया। अलाउद्दीन ने उसकी एक लड़की के अलौकिक सौंदर्य और गुणों का हाल सुन कर उससे कहा कि 'यदि तू अपनी लड़की मुझे सौंप दे तो तू बन्धन से मुक्त हो सकता है।' राजा ने, जिसके साथ कैदखाने में सख्ती की जाती थी, इस कथन को स्वीकार कर अपनी राजकुमारी को सुलतान को सौंपने के लिये बुलाया। राजा के कुटुम्बियों ने इस अपमान-सूचक प्रस्ताव को सुनते ही अपने वंश के गौरव की रक्षा के लिये राजकुमारी को विष देने का विचार किया। परन्तु, उस राजकुमारी ने ऐसी युक्ति निकाली जिससे वह अपने पिता को छुड़ाने तथा अपने सतीत्व की रक्षा करने में समर्थ हो सकती थी। तदनन्तर, उसने अपने पिता को लिखा कि 'आप ऐसा प्रसिद्ध कर दें कि मेरी राजकुमारी अपने सेवकों के साथ आ रही है और अमुक दिन (दिल्ली) पहुँच जायगी।' इसके साथ उसने राजा को अपनी युक्ति से भी परिचित कर दिया। उसकी युक्ति यह थी की अपने वंश के राजपूतों में से कोई-एक को चुन कर डोलियों में सुसज्जित कर बिठला दिया और राजवंश की स्त्रियों की रक्षा के योग्य सवारों तथा पैदलों के दल-बल के साथ वह चली। उसने अपने पिता के द्वारा सुलतान की आज्ञा भी प्राप्त करली थी, जिससे उसकी सवारी बिना रोक-टोक के मंजिल-दर-मंजिल दिल्ली पहुँची। उस समय रात पड़ गई थी। सुलतान की खास परवानगी से उसके साथ की डोलियां कैदखाने में पहुँचीं और वहां के रक्षक बाहर निकल आये। भीतर पहुँचते ही राजपूतों ने डोलियों से निकल अपनी तलवारें सम्हालीं और सुलतान के सेवकों को मारने के पश्चात् राजा सहित वे तैयार खड़े घोड़ों पर सवार होकर भाग निकले

सुलतान की सेना आने न पाई, उसके पहले ही राजा अपने साथियों सहित शहर से बाहर निकल गया और भागता हुआ अपने पहाड़ी प्रदेश में पहुंच गया, जहां उसके कुटुम्बी छिपे हुए थे। इस प्रकार अपनी चतुर राजकुमारी की युक्ति से राजा ने कैद से छुटकारा पाया और उसी दिन से वह मुसलमानों के हाथ में रहे हुए [अपने] मुल्क को उजाड़ने लगा। अन्त में, सुलतान ने चित्तौड़ को अपने अधिकार में रखना निरर्थक समझ खिज्रखां को हुकुम दिया कि किले को खाली कर उसे राजा के भानजे (मालदेव सोनगरा) के सुपुर्द कर दे।" (ब्रिग्ज़ के फरिस्ता के अंग्रेजी अनुवाद पर से, म. म. ओझाजी के उदयपुर राज्य के इतिहास' में उद्धृत, पृ. ४९२-९३)।

जैसा कि हम अच्छी तरह जानते हैं और अन्यान्य प्रमाणों के आधार पर सुनिश्चित है कि चित्तौड़ के राजा रतनसेन की रानी पद्मिनी को लक्ष्य कर ही फरिस्ता ने यह वर्णन लिखा है, तब यह आश्चर्य की बात है कि उसने उस स्त्री को, जिसे अलाउद्दीन माँग रहा था, राजा की रानी न कह कर बेटी किस तरह लिख दिया है? इस प्रसंग के कथन करने वाले किसी भी अन्य लिखित वृत्तान्त में यह बात नहीं पाई जाती। वर्णनगत प्राय: सारी बातें मुख्य रूप से जायसी की पदमावत वाली बातों से भी मिलती हैं, पर पदमावत में तो स्पष्ट रूप से पद्मिनी को राजा रतनसेन की रानी ही वर्णित किया गया है और उस बड़ी कथा का सारा कलेवर ही रानी को मुख्य नायिका बना कर संघटित किया गया है। यदि वह उस राजा की पुत्री होती तो जायसी की पदमावत ही नहीं बनती।

जायसी ने फरिस्ता के पहले कोई ६०-७० वर्ष पूर्व पदमावत की रचना की थी, जब दिल्ली का बादशाह शेरशाह सुलतान था। प्रमाणों से ज्ञात होता है कि उत्तर भारत के मुसलमानों में यह कथा काफ़ी प्रसिद्धि पा चुकी थी। फरिस्ता के उक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि उसको जायसी की पदमावत वाली कथा का बिल्कुल ही परिचय नहीं था, इसलिए पद्मिनी की कथा को केवल जायसी की कल्पना बतलाने वाले तथा उसी के बाद, पदमावत के आधार पर ही राजस्थान के भाटों आदि द्वारा पद्मिनी की कल्पित कथा का प्रचार किया जाना कहने वाले विद्वानों का तर्क-वितर्क सर्वथा असिद्ध प्रमाणित होता है। यदि फरिस्ता को जायसी की पदमावत वाली कथा की जानकारी होती तो वह पद्मिनी को चित्तौड़ के राजा की बेटी क्यों लिखता? उसको रानी के रूप में ही लिखने में उसे क्या आपत्ति हो सकती थी? इससे स्पष्ट है कि फरिस्ता को यह वर्णन लिखने में पदमावत के सिवा किसी अन्य ही गलत-सलत साधन का आधार मिला होना चाहिए; और, वह साधन किसी अज्ञानजन द्वारा प्रस्तुत किया गया

होना चाहिए। अतः फरिस्ता का यह वर्णन प्रमाण-शून्य है। उसे राजस्थान के इतिहास की सही जानकारी प्राप्त न थी। फरिस्ता जैसे हमारे देश की संस्कृति और परंपरा का अज्ञान प्रदर्शित करने वाले मुस्लिम लेखकों के ऐसे भ्रमात्मक वर्णनों ने ही हमारे इतिहास को बहुत विकृत रूप दे दिया है और उनके अध्ययन करने वाले एकांगी या एक दृष्टि वाले युरोपीय और एतद्देशीय कुछ विद्वान भी देश के राष्ट्रीय इतिहास को विद्रूप-रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न करते रहते हैं।

चित्तौड़ के राजा रतनसेन और उसकी रानी पद्मिनी के अस्तित्व को ही इनकार करने वाले हमारे देश के एक बहुत वड़े इतिहासविद् विद्वान् डॉ. कालिका रंजन कानूनगो हैं, जिन्होंने इस विषय को लेकर बंगला में कई लेख लिखे हैं तथा 'स्टडिज़ इन राजपूत हिस्टरी' नामक एक पुस्तिका भी अंग्रेजी में प्रस्तुत की है। इस पुस्तिका का पहला ही निबन्ध पद्मिनी की कहानी को कल्पित सिद्ध करने के लिए लिखा गया है। डॉ. कानूनगो इतिहास के बहुत बड़े विद्वान् है, उनका मुस्लिम-कालीन इतिहास का अध्ययन बहुत गहरा और बहुत चिन्तन-पूर्ण है। राजस्थान के मध्यकालीन इतिहास का भी उनका ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा है। इतिहास-विषयक इनके मार्मिक अध्ययन और अनुसन्धान के विषय में हमारी बहुत समादरपूर्ण कल्पना है। परन्तु, हमें कुछ संकोच के साथ यह मानना पड़ता है कि डॉ. कानूनगो के पद्मिनी-विषयक सारे तर्क-वितर्क भ्रमोत्पादक हैं और केवल मुस्लिम तवारीखों के एकांगी अध्ययन के कारण असंगति प्रकट करने वाले हैं। राजस्थान की परंपरागत जनश्रुतियां और सांस्कृतिक प्रवाहों का उन्हें बहुत कम परिचय मालूम देता है। इस बारे में हमने कुछ तो, अपने इससे पूर्व लिखित, पद्मिनी चउपई विषयक 'एक पर्यालोचन' वाले लेख में, इनके तर्कों का उल्लेख किया ही है; पर, हमें अब यहां पर भो इस बारे में कुछ विशेष कहना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। डॉ. कानूनगो ने रत्नसिंह और पद्मिनी विषयक कहानी को सर्वथा कल्पित सिद्ध करने के लिए अपने उक्त निबन्ध में कई ऐसे तर्क उपस्थित किए हैं जो सर्वथा भ्रमोत्पादक तो हैं ही पर साथ में जिन प्रमाणों के आधार पर वे अपना मन्तव्य सिद्ध करना चाहते हैं, वे प्रमाण स्वयं उनके मन्तव्य के विरुद्ध जाते हैं। हम उनमें से कुछ का विचार यथा-प्रसंग यहां करना चाहते हैं। हमारा राजस्थान-विषयक इतिहास का जो अल्प-स्वल्प अध्ययन है और जिसका हमने केवल तटस्थ भाव से मनन किया है, उसके आधार पर हमारा यह श्रद्धापूर्ण विश्वास है कि चित्तौड़ के राजा रतन-सेन और उसकी रानी पद्मावती का ऐतिहासिक अस्तित्व उतना ही सुनिश्चित है जितना कि दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी का है।

डॉ० कानूनगो फरिस्ता के एतद्विषयक उल्लेख को अपने तर्क को ठीक बताने के लिए एक प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि पद्मिनी की कहानी इसलिए कल्पित है कि फरिस्ता जैसे खोजी इतिहासकार ने, जिसने अपने इतिहास के साधन जुटाने की दृष्टि से बहुत कुछ परिभ्रमण किया था और शायद राजस्थान का भी दौरा किया था और वहाँ के लोगों से जानकारी प्राप्त की थी, चित्तौड़ के वर्णन में कहीं पद्मिनी का नामोल्लेख नहीं किया, बल्कि उसने तो उस नारी को राजा की बेटी लिखा है[1], इत्यादि। यह बड़ा विचित्र तर्क है कि किसी अज्ञान लेखक ने, अपनी भ्रमपूर्ण जानकारी के आधार पर, किसी व्यक्ति के वास्तविक नाम के बदले किसी अन्य व्यक्ति का उल्लेख कर दिया हो और तत्सम्बन्धी वृत्तान्त को अन्यथा रूप में लिख दिया हो तो, वह उल्लेख अन्यान्य प्रामाणिक आधारों पर स्थापित तथ्यभूत वृत्तान्त को कल्पित सिद्ध करने में एक प्रमाण समझा जाय। फरिस्ता के सिवा अन्य अनेक प्राचीन एवं अधिक प्रमाणभूत उल्लेखों से यह सुनिश्चित है कि पद्मिनी चित्तौड़ के राजा रतनसेन की रानी थी, न कि बेटी। अतः फरिस्ता का यह कथन सर्वथा भ्रमपूर्ण और अज्ञान-द्योतक है। उसके कथन को एक खोजी विद्वान् का कथन मानना उतना ही भ्रमपूर्ण है जैसा कि उसका स्वयं का कथन। फरिस्ता ने किसी छान-बीन के आधार पर ऐसा उल्लेख किया हो, ऐसा किसी तरह प्रतीत नहीं होता। किसी अनभिज्ञ जन द्वारा उसने यह बात सुनी और लिख डाली; बस, इतना ही इसका मूल्य है। फरिस्ता राजपूताना में भी घूमा था और यहां से अपने इतिहास की सामग्री जुटाने का उसने प्रयत्न किया था, ऐसा कोई प्रमाण उसका इतिहास पढ़ने से ज्ञात नहीं होता। वह सुदूर दक्षिण में अधिक रहा, जहां राजस्थान के प्राचीन इतिहास के प्रसंगों का उसे ज्ञान प्राप्त होने की कोई संभावना नहीं थी। वहाँ मुसलमानी लेखकों द्वारा लिखे गए इतिहासों को पढ़-पढ़ कर उसने अपना वह बड़ा इतिहास लिखा। हिन्दु विद्वानों के संसर्ग में आने का उसका कोई प्रसंग ही नहीं था, न वह वैसा कोई अधिकारी था जिससे उसको ऐसी घटनाओं के बारे में उचित जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता महसूस हुई होती। जैसा कि कानूनगोजी ने अनुमान किया है, यह तर्क संभव हो सकता है कि उसने रणथंभोर वाले हमीरदेव की पुत्री देवलदेवी के सम्बन्ध को चित्तौड़ के राजा के प्रसंग से मिला दिया हो; और, यदि ऐसा हो तो फरिस्ता के इतिहास की अज्ञानता एवं अप्रामाणिकता और भी अधिक पुष्ट और स्पष्ट हो जाती है।

१. देखिए—'स्टडीज़ इन राजपूत हिस्ट्री' पृ० ८-९।

फरिस्ता के उल्लेख को, जिसमें उसने पद्मिनी के प्रसंग के संकेत में उसे चित्तौड़ के राजा की पुत्री लिखा है, स्वर्गीय म. म. गौरीशंकरजी ओझा ने अपने 'राजपूताने के इतिहास' ग्रन्थ में, अप्रामाणिक माना है और लिखा है कि— 'फरिस्ता ने उसमें (अर्थात् पदमावत वाली कथा में) कुछ-कुछ घटा-बढ़ी कर ऐतिहासिक रूप में उसे रख दिया है और पद्मिनी को राणी न कह कर बेटी बतलाया है। फरिस्ता का यह लेख हमें तो प्रामाणिक नहीं मालूम होता।'

(राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृष्ठ ४९३)।

म. म. ओझाजी के इस कथन को डॉ. कानूनगोजी अपर्यालोचित (अन्क्रिटीकल) मानते हैं। पर, इसके विरुद्ध किस आधार पर वे फरिस्ता के कथन को अधिक प्रामाणिक समझते हैं, यह कुछ नहीं कहते। यह हम भी मानते हैं कि फरिस्ता ने कहीं किसी से सुनी-सुनाई बात के आधार पर पद्मिनी को चित्तौड़ के राजा की बेटी लिख दिया, उसने कोई खास खोज नहीं की; बस, इतना ही उसके उल्लेख का तात्पर्य है। उसको प्रामाणिक कहने वालों के पास अन्य कोई प्रमाण नहीं है, अतः इस विषय में फरिस्ता के कथन को महत्त्व देना सर्वथा अपर्यालोचित और अनैतिहासिक तर्क है।

हमें यह पढ़ कर और भी आश्चर्य होता है कि कानूनगोजी अपने इसी निबन्ध में, आगे चल कर, रणथंभोर वाले वीर हमीर की पुत्री देवलदेवी वाली घटना को भी अनैतिहासिक बतलाते हैं क्योंकि उसका उल्लेख किसी मुसलमान इतिहासकार ने नहीं किया। हम इस कुतर्क का निरसन अपने हमीर महाकाव्य वाले पर्यालोचन में कर रहे हैं, अतः यहां अधिक कुछ कहने का उचित प्रसंग नहीं है।

फरिस्ता के सम-सामयिक, परन्तु कुछ पूर्ववर्ती, महान् लेखक अबुल-फजल ने आइने-अकबरी नामक अपनी सर्वश्रेष्ठ और जगविख्यात पुस्तक में चित्तौड़ के इस प्रसंग का संक्षेप में वर्णन किया है, जो सर्वथा संगत और तथ्यभूत बातें प्रकट करता है। यह सब कोई जानते हैं कि फरिस्ता की अपेक्षा अबुल फज़ल का ज्ञान और अधिकार बहुत बड़ा था। वह राजस्थान और राजपूतों के इतिहास की जानकारी प्राप्त करने में सबसे अधिक समर्थ था। वह हिन्दु जाति के सर्व प्रकार के वर्ग और संप्रदायों के श्रेष्ठ व्यक्तियों तथा विद्वानों के घनिष्ठ संपर्क में रहता था। मेवाड़ के राजवंश के प्राचीन गौरव और इतिहास का उसे यथेष्ट ज्ञान था। वह अन्यान्य मुसलिम लेखकों की तरह केवल इधर-उधर की सुनी-सुनाई बातों को, अपने ख़यालों और इरादों के अनुसार, तोड़-मरोड़ कर

लिखने वाला चापलूस लेखक नहीं था। वह महान् ज्ञानपिपासु, सत्यान्वेषी, तथ्य-खोजी और अपने समय का अत्यन्त असाधारण विद्वान् था। अबुल फज़ल का यह वर्णन इस प्रकार है—

"प्राचीन वृत्तांतों में लिखा है कि दिल्ली के बादशाह सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने सुन रखा था कि मेवाड़ के राजा रावल रतनसी की स्त्री बहुत रूपवती है। उसने उसकी मांग की, परंतु अस्वीकृत कर दिए जाने पर अपनी इच्छा पूरी करने के लिए उसने एक फौज के साथ चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। एक अरसे तक उस स्थान पर घेरा डाले रहने पर जब कोई नतीजा न निकला तो उसने कपट का मार्ग अपना कर सुलह और मित्रता का प्रस्ताव आगे रखा। राजा ने तुरंत ही अपनी सहमति प्रकट कर उसे जश्न का न्यौता दिया। अपने चुनिंदा साथियों को लेकर सुलतान ने किले में प्रवेश किया और आमोद-प्रमोद के वातावरण में दोनों की भेंट हुई। परंतु, अवसर पाते ही वह राजा को पकड़ कर वहाँ से ले आया। कहते हैं, सुलतान के नौकर-चाकरों की संख्या १०० थी तथा सिपाहियों के वेश में ३०० चुनिंदा साथी साथ थे। राजा की फौज एकत्रित होती इससे पहले ही विलाप करते हुए उसके लोगों के बीच से, उसे जल्दी से बादशाह के डेरे की तरफ ले जाया गया। अपनी इच्छा को मनवाने हेतु बादशाह ने राजा को कड़ी कैद में रक्खा। उसे बहुत सताया गया इसलिए राजा के विश्वासपात्र मंत्रियों ने बादशाह से याचना की कि उसके प्रेमपात्र को सौंप देने के अतिरिक्त उसके हरम के लायक अन्य स्त्रियाँ भी उसके पास भेज दी जावेंगी। उन्होंने उस धर्मपरायण नारी से एक जाली पत्र भिजवा कर उसकी आशंकाओं को भी बहला कर शांत कर दिया। बादशाह प्रसन्न हुआ और राजा पर बल-प्रयोग के वजाय उससे नरम व्यवहार करने लगा। ऐसा वर्णन मिलता है कि ७०० चुने हुए सिपाहियों को ज़नाने लिबास में डोलियों में बैठाकर बादशाह के खेमे की ओर रवाना कर दिया गया तथा यह घोषणा कर दी गई कि रानी अपनी बहुत-सी दासियों के साथ शाही खेमे को प्रस्थान कर चुकी है। खेमे के निकट आने पर यह इच्छा व्यक्त की गई कि बादशाह के निवास-स्थान में प्रविष्ट होने से पूर्व रानी राजा से भेंट करना चाहती है। अपनी सुरक्षा के मोहात्मक स्वप्न के चक्कर में पड़ कर बादशाह ने भेंट की अनुमति प्रदान कर दी; इसी समय सिपाहियों ने अवसर का लाभ उठा कर अपना भेष बदला और वे राजा को छुड़ा लाए। राजपूतों ने पीछा करने वालों का बड़ी मर्दानगी से बारबार मुकाबला किया और राजा के दूर निकल जाने तक बहुतों को मौत के घाट पार उतार दिया। अंत में, गोरा और

बादल चौहानों ने मृत्युपर्यन्त युद्ध किया जिससे सर्वत्र जय-जयकार के बीच रावल सकुशल चित्तौड़ पहुँच गया। घेरा डाले रहने में बड़ी कठिनाइयों को सहन न कर सकने के कारण तथा इसे निरर्थक जानकर बादशाह वापस दिल्ली लौट आया। कुछ समय पश्चात् उसने वापस इसी योजना पर दिलजमी की, परन्तु हार कर लौट आया। इन आक्रमणों से उकता कर रावल ने सोचा कि बादशाह से मुलाकात करने से शायद कोई संबंध-सूत्र बँधें और इस प्रकार इस स्थायी कलह से वह छुटकारा पा सके। एक बाग़ी के बहकावे में आकर चित्तौड़ से ७ कोस दूर एक स्थान पर वह बादशाह से मिला, जहाँ छलपूर्वक उसका वध कर दिया गया। इस घातक घटना के पश्चात उसके वंशज अरसी को गद्दी पर बैठाया गया। सुलतान ने चित्तौड़ को पुनः घेर कर उस पर अधिकार कर लिया। राजा लड़ते-लड़ते मारा गया तथा सभी नारियाँ स्वेच्छा से अग्नि में जल मरीं।"

(कर्नल जैरेट के अंग्रेजी अनुवाद से अनूदित 'आइने-अकबरी' भाग २, पृ० २७४-२७५)

अबुल फज़ल के इस वर्णन के साथ हेमरत्न द्वारा वर्णित घटना का बहुत कुछ साम्य दिखाई देता है। अबुल-फज़ल कहता है कि चित्तौड़ वाली घटना का यह वर्णन 'पुराने वृत्तान्तों के आधार पर' आलेखित है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उसको इस प्रसंग के वर्णन करने वाले पुराने उल्लेख और प्रमाण अवश्य मिले थे। अबुल फज़ल के वर्णन में जायसी की पदमावत की कोई छाया नहीं मिलती—परन्तु, हेमरत्न की पद्मिनी चौपई के कथनों के साथ उसका बहुत साम्य है। इसका मतलब यह नहीं है कि अबुल फज़ल ने हेमरत्न की रचना को देखा हो या उसका आधार लिया हो, परंतु इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हेमरत्न के पहले भी राजस्थान में पद्मिनी की कथा-विषयक प्राचीन लिखित सामग्री विविध रूप में यत्र-तत्र उपलब्ध थी, जिसके आधार पर जायसी ने और हेमरत्न ने अपनी-अपनी रचनाओं का अपने-अपने ढंग से निर्माण किया। हमने इसके प्रमाण-स्वरूप अपने ऊपर वाले पर्यालोचन में हेमरत्न द्वारा उद्धृत प्राचीन छप्पय आदि पद्यों का उल्लेख किया ही है। अतः इससे यह पूर्णतया निश्चित है कि जायसी के पूर्व पद्मिनी की कथा सर्व-विश्रुत थी।

इस प्रकार जब फरिस्ता के पहले होने वाले सुदूर उत्तर भारत के मुस्लिम कवि जायसी, राजस्थानी के जन परम्परा के मर्मज्ञ कवि हेमरत्न और मुगल सम्राट् अकबर के शाही दरबार के मुख्य एवं अधिकारी लेखक अबुल फज़ल

ने पद्मिनी को राजा रतनसेन की रानी के रूप में उल्लिखित किया है तब फरिस्ता ने उसे राजा की पुत्री के रूप में जो आलेखित किया है, वह सर्वथा निर्मूल सिद्ध होता है।

फरिस्ता के समान ही कर्नल टॉड को भी एक ऐसा ही कोई भ्रमात्मक आधार मिल गया मालूम देता है, जिससे उसने पद्मिनी को रावल रतनसेन या रतनसिंह के बदले लखमसी के चाचा भीमसी (भीमसिंह) की पत्नी लिखा है और उसे सिंहलद्वीप के चौहान राजा हमीर की पुत्री के रूप में आलेखित किया है। पद्मिनी और रतनसेन की सत्ता को अस्वीकार करने वाले विद्वानों को यह भी एक उनके कथन को पुष्ट करने वाला प्रामाणिक-सा उल्लेख प्रतीत होता है। म० म० ओझाजी ने अपने ग्रन्थ में टॉड के इस उल्लेख को सर्वथा भ्रमात्मक सिद्ध कर दिया है इसलिये इस विषय में इसका यहाँ पुनरुल्लेख करना अनावश्यक है। ओझाजी ने कहा है कि टॉड को भाटों द्वारा ऐसी बहुत-सी असंगत बातें प्राप्त हुई थीं और जिनको उसने, अन्यान्य प्रमाणों के अभाव में विश्वसनीय मानकर, अपने इतिहास में उल्लिखित करदीं। जिस तरह टॉड का यह उल्लेख कि पद्मिनी भीमसिंह की पत्नी थी, भ्रमात्मक है, उसी तरह फरिस्ता का भी उक्त उल्लेख कि वह राजा रतनसेन की पुत्री थी, सर्वथा भ्रमात्मक ही है।

❀

भाटों, चारणों और अन्य कवियों आदि-जैसे राजस्थान के प्राचीन प्रवादों के ज्ञाताओं को अपने पूर्वजों के वंश-परम्परागत स्मरणों और कथनों के द्वारा मूल बात तो अच्छी तरह ज्ञात होती रहती थी कि चित्तौड़ की रानी पद्मिनी के लिये दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर भयंकर आक्रमण किया था, तथा बादशाह ने छल-कपट करके चित्तौड़ के राजा को पकड़ कर कैद कर लिया था, और फिर गोरा-बादल जैसे शूरवीर राजपूतों ने वैसे ही छल-कपट का प्रयोग करके राजा को छुड़ाकर बादशाह को बुरी तरह वहाँ से लौटने के लिये विवश किया था—इत्यादि; परन्तु, समय के बीतने पर और चित्तौड़ पर उसके बाद भी मुसलमानों द्वारा कई बार किये गये ऐसे दुष्ट आक्रमणों के कारण, उन भाटों आदि की स्मृतियों और श्रुतियों में, समय और व्यक्तियों आदि के नामों के बारे में उलट-सुलट अथवा विसंगत वचनों और कथनों का पाया जाना सर्वथा स्वाभाविक है। समकालीन माने जाने वाले उल्लेखों और प्रमाणों में भी ऐसी अनेक बातें मिलती हैं जो परस्पर विसंगत ज्ञात होती हैं, तो फिर सैकड़ों वर्षों से चली आती हुई पुरानी बातों में ऐसे गौण कथनों में कोई

असंगति पाई जाए तो उससे सारी मूल घटना ही कैसे कल्पित सिद्ध हो सकती है ? चित्तौड़ के इतिहास की इस घटना का मुख्य पात्र पद्मिनी थी; पद्मिनी ही इस सारी घटना का मूलभूत केन्द्र रूप थी इसलिए पद्मिनी का नाम और उसके निमित्त घटी घटना का विशिष्ट स्मरण राजस्थान के जन-जीवन में सदैव बराबर जागृत रहता हुआ सैकड़ों वर्षों तक अव्यवहित रूप से चला आता रहा था। इसलिये उसी केन्द्रभूत नाम और उससे सम्बद्ध घटना के मुख्य पात्र के विषय में लोकों में जो विविध प्रकार के कवित्त-छप्पय आदि प्रचलित थे उनके आधार पर किसी अज्ञातनामा कवि-कृत गोरा-बादल कवित्त, जायसी-रचित पदमावत, हेमरत्न-रचित गोरा-बादल पद्मिनी चउपई, जटमल नाहर कृत गोरा-बादल चउपई आदि कृतियों की रचनाएँ निर्मित हुईं; तथा इसी तरह अबुल फज़ल, फरिस्ता आदि मुस्लिम इतिहासकारों ने उस वृत्तान्त को अपने ग्रन्थों में उल्लिखित किया। पर, इस नाम और घटना की अनैतिहासिकता बतलाने वाले विद्वानों का मुख्य तर्क यह है कि यह कथा सर्व-प्रथम कवि जायसी द्वारा ही कल्पित की गई है। इसके पहले इस कथा के अस्तित्व का सूचक कोई प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं है। यह ठीक है कि तर्क के रूप में यह कथन कुछ बल रखता है क्योंकि जब तक जायसी के पूर्व का कोई खास लिखित आधार उपस्थित नहीं किया जाता तब तक इस तर्क को सर्वथा असिद्ध साबित नहीं किया जा सकता।

डॉ. कानूनगो जैसे इतिहास के मर्मज्ञ और आलोचक विद्वान का यह एक दृढ़ और आग्रही मत बन गया है कि पद्मिनी की कथा का सर्जन जायसी की कल्पित घटना के आधार पर ही हुआ है, उसके पीछे कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है, इत्यादि।

हमने इन पंक्तियों के लिखने के पहले, 'पद्मिनी-विषयक एक पर्यालोचन' वाले अपने लेख में, सरसरी तौर से राजस्थान के इतिहास के विशिष्ट मर्मज्ञ एवं हमारे परम मित्र डॉ. दशरथजी शर्मा के उल्लेखों के अनुसार डॉ. कानूनगो के कथन के बारे में कुछ विचार लिख डाले हैं और वह लेख दो-तीन महीने पहले ही पूरा छप चुका है। बाद में, हमें रत्नसिंह के बारे में कुछ उल्लेख मिले जो इस विषय पर कुछ नया प्रकाश डालने वाले प्रतीत हुए, अतः हमने अपने उस पर्यालोचन वाले लेख के अनुसन्धान स्वरूप, परिशिष्ट के रूप में इस प्रकरण को लिखना योग्य समझा। रत्नसिंह-विषयक इस समस्या का लिखना प्रारम्भ करने के पहले हमारी यह कल्पना नहीं थी कि पद्मिनी के विषय में और कुछ विशेष रूप से लिखना आवश्यक होगा। इस समस्या पर विशेष रूप से विचार करने से पूर्व हमने डॉ. कानूनगो की उक्त पुस्तिका को विशेष मनन के साथ नहीं पढ़ी

थी। हमारी अपनी आँखों की अत्यन्त क्षीण शक्ति के कारण हम विशेषकर स्वयं पढ़ने में और लिखने में प्रायः असमर्थ हो चुके हैं अतः अन्य मित्रों द्वारा कुछ बचवा-पढ़वा कर अपने अभीष्ट विषय का सार समझ लेने का प्रयास करते रहते हैं। प्रस्तुत लेख लिखते समय हमने डॉ. कानूनगो की उक्त पुस्तिका का कुछ विशेष रूप से मनन किया और इस विषय से सम्बद्ध कुछ अन्यान्य नए-पुराने उल्लेखों का भी मनन किया। म. म. ओझाजी ने जो राजस्थान के इतिहास के एक सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे और जिन्होंने अपने समय में ज्ञात व उपलब्ध प्रमाणों का सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण कर अपना जो अभिमत प्रदर्शित किया था, उसको भी पुनः मनन पूर्वक देखा तो हमें प्रतीत हुआ कि इस विषय में उपस्थित किये गये प्रमाणों की ठीक-ठीक परीक्षा नहीं हुई है और कुछ परस्पर बाधक एवं भ्रमात्मक उल्लेखों के आधार पर इस सारे वृत्तान्त को विकृत रूप में उपस्थित किया गया है।

❀

पद्मिनी से सम्बद्ध चित्तौड़ के इतिहास की घटना का महत्त्व हमारे देश के इतिहासज्ञ विद्वान् बहुत कम समझ रहे हैं। उनके ज्ञान में इस घटना का तादृश आकलन नहीं हुआ है। यह घटना केवल चित्तौड़ राज्य के उस समय की सामान्य प्रादेशिक घटना की कोटि की नहीं है। यह घटना सारे भारत के राष्ट्रीय इतिहास का प्रवाह बदलने वाली एक असाधारण घटना थी। भारत के हृदय रूप दिल्ली पर कब्जा जमा लेने के बाद वहाँ के मालिक बनने वाले मुसलमान शासकों का मुख्य एवं चरम लक्ष्य क्या रहता था, यह रहस्य राजपूतों को समझ में इसके पहले ठीक-ठीक नहीं आया था। राजपूत समझते रहे कि जैसा कि हर कोई प्रबल शासक अपनी सत्ता बढ़ाने के लिए अपने पड़ौसी राज्यों पर आक्रमण करता रहता है और लड़-झगड़ कर अपनी सत्ता को सुदृढ़ करना चाहता रहता है इसी तरह दिल्ली के मुसलमान शासक भी अपनी सत्ता को स्थिर और विस्तृत करने का प्रयत्न करते रहते हैं और वे अपने आसपास के राज्यों पर आक्रमण करते रहते हैं। उन आक्रमणों का सामना करना प्रत्येक राज्य के रक्षक शासक का कर्त्तव्य होता है और वह यथाशक्ति वैसा करता चला आया है। यह राज्यसत्ता का एक सर्वमान्य और सर्वव्यापी सिद्धान्त है। क्या हिन्दु क्या मुसलमान सभी शासकों की यह सामान्य राजनीति समझी जाती रही। परन्तु, अलाउद्दीन के भारतव्यापी क्रूर आक्रमणों का उद्देश्य केवल इस प्रकार की सामान्य राज्यसत्ता बढ़ाने वाली सीमा तक ही सीमित नहीं था; उसका मुख्य उद्देश्य भारत की प्राचीन संस्कृति को सर्वथा नष्ट कर देने का भी था। वह

क्रूरातिक्रूर अत्याचारों द्वारा अपनी दानवी शक्ति बढ़ाता जा रहा था और उसके बल पर भारत के राष्ट्रीय धर्म, गौरव और इतिहास का सर्वनाश करना चाहता था। इसीलिए वह हिन्दु जाति के धर्म-स्थानों-देव-मन्दिरों को जमीं-दोज़ करवा रहा था, अपने बर्बर सैनिकों द्वारा भारत के गांव-गांव में अत्याचारों की अग्नि की ज्वालाओं में भारतीय जन-जीवन को झुलसा रहा था, वह गांवों और शहरों की सम्पत्ति लूट कर तथा वहाँ के हजारों लाखों निवासीजनों को या तो मौत के घाट उतरवा रहा था या उन्हें कैदी बना कर बकरियों व भेड़ों की तरह रस्सों से बांध कर गांवों व जंगलों में घुमाता-भटकाता अन्य प्रांतों, प्रदेशों या अन्य मुल्कों में दासों के रूप में बिकवाता रहा था तथा कुलीन घरों की सुन्दर स्त्रियों को पकड़वा कर उन्हें अपने दुराचारी सरदारों—सैनिकों में बँटवाया करता था और इस तरह समग्र हिन्दु जाति के जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर, इस्लाम के नाम पर उनकी कुर्बानी करवा रहा था। अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर किए गए आक्रमण का भी यही मुख्य उद्देश्य था।

चित्तौड़ का राजवंश हिन्दु जाति का एक सर्वश्रेष्ठ राजकुल और आदर्शभूत राजपूत राजघराना था। दैवयोग से उस राजघराने की जो राजरानी थी वह गुण और रूप से उस समय हिन्दु-नारी का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक रूप थी। हिन्दु जाति के गौरवनाशक अलाउद्दीन को जब यह ज्ञात हुआ कि चित्तौड़ के राजघराने में ऐसी रानी है जो पद्मिनी के अनुपम लक्षणों और गुणों से परिपूर्ण है, तो उसने चित्तौड़ के राज्य को नष्ट करके उसकी राजरानी को बन्दी बना कर, अपने दुराचारपूर्ण दुष्ट हरम-रूप नरकागार में डाल कर उसकी दुर्गति करने का दुष्ट संकल्प किया। वह अपनी प्रवल सैन्य शक्ति के साथ चित्तौड़ पहुंचा। मेवाड़ के राजपूतों ने अपनी सर्व शक्ति से उसका डट कर सामना किया। यह तो निश्चित ही था कि उसकी वैसी दानवी शक्ति के सामने मेवाड़ के मुट्ठी-भर राजपूत कितने दिन टिक सकते थे? पर, उन मुट्ठीभर राजपूतों ने भी अपने कुल की मर्यादा की रक्षा के लिए और समग्र आर्य नारीवर्ग की प्रतीक-भूत अपनी राजरानी के सतीत्व की रक्षा के निमित्त जो पराक्रमपूर्ण वीरता दिखाकर अपने सारे राजवंश का वलिदान कर दिया, उसकी तुलना बतलाने वाला भारत के समग्र इतिहास में अन्य कोई उदाहरण नहीं मिलता।

चित्तौड़ के इस अत्यंत संकटमय और दुःखद प्रसंग ने राजपूत जाति को अद्भुत रीति से जागृत किया, उसको नई चेतना प्रदान की, चित्तौड़ में घटी इस घटना ने एक ऐसे शूरवीर नये राजवंश को जन्म दिया, जिसने उसके वाद के ५०० वर्षों तक भारत के राष्ट्रीय गौरव और धर्म की रक्षा के लिए

सर्वाग्रिम स्थान प्राप्त किया। चित्तौड़ के इसी पुनर्जन्म-प्राप्त महान् राज-वंश के प्रभाव के कारण राजस्थान के बाद वाले सभी राजपूत राज्य सशक्त हुए। उनमें देश और धर्म की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति देने की एक अद्भुत वीरता का संचार हुआ। ये राजपूत अलाउद्दीन के बाद होने वाले दिल्ली के मुसलिम बादशाहों से लोहा लेना सीखे। ५०० वर्षों तक इन्होंने दिल्ली के भारतीय-संस्कृति-नाशक विधर्मी बादशाहों को सुख से नहीं सोने दिया। सारा भारत जब निःसत्त्व और निर्वीर्य होकर अपनी अस्मत्ता को खो बैठा था और उन विधर्मी और घातक बादशाहों के क्रूर दमन के नीचे दलित होकर दुःखों से कराह रहा था, तब राजस्थान के ये मुट्ठीभर राजपूत-राज्य दिन-रात इन विधर्मी दुष्टों के कुकृत्यों का सामना करते रहे थे और उन्होंने अपने देश और धर्म की रक्षा करते हुए भारत के अस्तित्व को बचाए रखा था। यदि चित्तौड़ के उन ध्वंसावशेषों में छिपे हुए पद्मिनी के पुण्य स्मरणों के स्फुलिंग प्रस्फुटित न होते तो मेवाड़ का यह प्रतापी राजवंश पुनः प्रतिष्ठित न होता और न राजपूत राज्यों में वह बल ही संचारित होता जो मेवाड़ के पराक्रमी सूर्यवंशी राजाओं द्वारा प्रसारित ज्योति से होता रहा है। उन हिन्दु-धर्म-विद्वेषी मुसलिम शासकों की मुख्य नीति यही रही थी कि हिन्दुओं को क्रूर अत्याचारों द्वारा विवश करके उन्हें धर्म-भ्रष्ट किया जाय और सारे देश को मुस्लिम-धर्म का अनुयायी बना दिया जाय। राजस्थान के ये राजपूत राज्य ही ऐसे बच रहे थे जिनको अपने धर्म और राष्ट्र की रक्षा का सबसे अधिक कर्त्तव्य-भान था और वे उसके लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर देने को सदैव तत्पर रहते थे। इन्हीं राजपूतों के ऐसे वीरतापूर्ण कार्यों के कारण मुसलमान अपने मनसूबों को सफल नहीं कर पाये। और तो और, अकबर जैसा महान् मुगल सम्राट भी अपनी पूरी शक्ति लगा देने पर भी मेवाड़ के महान् सूर्यवंशी राणा प्रताप को अपने राष्ट्र धर्म से विचलित नहीं कर सका और उसकी प्रखर-प्रताप ज्योति को अपने विश्वग्रासी फुंकार से नहीं बुझा सका। अत्यंत हिन्दुद्वेषी मुगल बाद-शाह औरंगजेब भी इन राजपूतों की स्वराष्ट्रभक्ति को न हिला सका और इनके संरक्षण में सुरक्षित हिन्दु जाति का सर्वनाश न कर सका। यदि चित्तौड़ की उस घटना के कारण राजपूतों में नई चेतना न जागृत होती और उसी चित्तौड़ की भूमि में पद्मिनी की रक्षा के लिए अपने प्राणों की प्रचण्ड आहुति देने वाले उन देवांशी राजपूत नर-नारियों की बची हुई बाल-संतानों से बाद में प्रसूत हमीर जैसे अनेक नर-वीरों का प्रादुर्भाव न हुआ होता तो उसके बाद आने वाली शताब्दियों में सारा उत्तर भारत, राजस्थान, मध्य-प्रदेश, गुजरात

और महाराष्ट्र जैसे आर्य-प्रदेश की भी आज वही स्थिति होती जो सिन्ध, पंजाब, काश्मीर और पूर्व-बंगाल की हुई और जिसके कारण प्राचीन भारत का असल आर्य-प्रदेश पाकिस्तान बन कर प्रबल शत्रु के रूप में सामने आया। इसलिये पद्मिनी के अस्तित्व और पुण्य-जीवन-स्मरण का विलोप करने वाला बुद्धि-भ्रंशक प्रयास, हमें भारत के राष्ट्रीय गौरव के इतिहास के एक सर्वोत्तम प्रकरण को मिटा देने जैसे कुत्सित अतएव तिरस्करणीय लगता है। अतः हम हमारे मान्य विद्वान् मित्रों को कुछ अप्रिय लगने वाली बातों का दोष ओढ़ कर भी, इस लेख को लिखने में प्रवृत्त हुए हैं।

यहाँ पर हमारा प्रस्तुत वक्तव्य-विशेष यह है कि डॉ० कानूनगो की पुस्तिका को खास मननपूर्वक देखने से उनके द्वारा इस विषय में उत्थापित किये अनेक तर्कों में से कुछ तर्क तो तर्क के रूप में ठीक मालूम देते हैं, परन्तु, उन्होंने अपने तर्कों पर से जो निष्कर्ष निकाले हैं उनका कुछ ही अंश हमें स्वीकार्य स्वरूप लगता है, और बहुत कुछ अंश सर्वथा भ्रमोत्पादक है। उनके कई तर्क ऐसे हैं जो शुद्ध तर्क की कोटि में न आकर तर्काभास की कोटि के हैं और ऐसे तर्काभास कोटि वाले उल्लेख ही प्रायः इनके कथन में अधिक दिखाई देते हैं। डॉ० कानूनगो ने अपना निबन्ध बड़े परिश्रम-पूर्वक तैयार किया है और इस विषय के जितने आधार उनको उपलब्ध हुए, उन सबका परीक्षण करके उन्होंने अपना मन्तव्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। पर, उनके ये आधार कुछ तो स्वयं भ्रमात्मक और गलत हैं तथा कुछ का अर्थ उन्होंने गलत समझा है। अतः उन आधारों पर जो निष्कर्ष उन्होंने निकालना चाहा है वह तर्कसंगत न होकर तर्काभास का सूचक है। उनका यह आग्रही मत बन गया है कि पद्मिनी की यह कथा केवल जायसी द्वारा ही प्रसूत हुई है, अतः इस विषय के जो साधक-बाधक प्रमाण उनको उपलब्ध हुए उन सबका उपयोग उन्होंने अपने मन्तव्य की पुष्टि करने के अर्थ में ही किया है। ऐसे मन्तव्यों को देख कर हमें महान् तत्त्वद्रष्टा आचार्य हरिभद्रसूरि की इस उक्ति का स्मरण हो आता है कि—

आग्रही बत निनीषति युक्तिं
यत्र, तत्र मतिरस्य निविष्टा

अर्थात् आग्रही विद्वान् अपनी युक्ति को उसी तरफ खींचना चाहता है जिधर उसकी मति चिपकी रहती है।

कुछ पुनरुक्ति-दोष को स्वीकार करके भी हम यहां पर इस विषय में डॉ० कानूनगो के तर्कों अथवा तर्काभासों का क्रम से विचार करना चाहते हैं।

उनके तर्कों में सब से बड़ा और मुख्य तर्क यह है कि जायसी के पहले का पद्मिनी-विषयक कोई उल्लेख किसी इतिहास में नहीं मिलता; अतः यह कथा जायसी द्वारा निर्मित एक कल्पित कथा है, न कि किसी ऐतिहासिक वृत्तान्त की सूचक है।

डॉ० कानूनगो का यह कथन तो ठीक है कि जायसी के पहले इतिहास-विषयक किसी मुस्लिम पुस्तक में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता पर सभी इतिहास-विद् यह अच्छी तरह मानते हैं कि किसी भी ऐतिहासिक घटना का किसी पुस्तक-विशेष में न मिलना किसी विशिष्ट घटना का निषेधक प्रमाण नहीं हो सकता, जब तक कि उसका निषेध करने वाला वैसा ही कोई असन्दिग्ध या प्रबल प्रमाण नहीं उपलब्ध होता। अतः डॉ० कानूनगो का यह उक्त तर्क, तर्क नहीं परन्तु, तर्काभास है।

डॉ० कानूनगो अपने तर्कों की पुष्टि में सर्व-प्रथम उन मुस्लिम इतिहासकारों के उल्लेख उपस्थित करते हैं जो अलाउद्दीन के समकालीन और उसके प्रत्यक्ष संपर्क में रहने वाले अथवा उसके जीवन से सुपरिचित थे। इन लेखकों में सबसे मुख्य लेखक अमीर खुसरो है। डॉ० कानूनगो इसके विषय में लिखते हैं कि "हिन्दुस्तान का तोता, अमीर-खुसरो अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण के समय स्वयं उपस्थित था। उसने अलाउद्दीन के राज्यकाल पर 'दो प्रामाणिक इतिहास' (bonafide history) लिखे हैं, जिनके नाम 'तारीखे-अलाई' एवं 'खज़ाइन-उल-फुतूह' हैं। दोनों कृतियों के अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध हैं। 'तारीखे-अलाई' स्पष्टतः पहले की रचना है तथा अपेक्षाकृत अधिक संयत शैली में लिखी गई है, जबकि 'खजाइन-उल-फुतूह' में कृत्रिम शब्दाडम्बरों की भरमार है, जिसमें अलाउद्दीन द्वारा बनवाई इमारतों आदि का अधिक वर्णन मिलता है। 'तारीखे-अलाई' में हमें सुल्तान के दिल्ली से रवाना होने की तिथि, राजपूतों का बड़ी बहादुरी से मुकाबला, चित्तौड़ के पतन की तिथि (अगस्त २६, १३०३ ई०), राय का भाग निकलना तथा अंत में आत्म-समर्पण कर देने का वर्णन मिलता है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि यद्यपि अमीर खुसरो प्रत्यक्ष-दर्शी था परन्तु उसने दैनिक घटनाओं का ब्यौरा नहीं दिया है अपितु चित्तौड़ में अलाउद्दीन के राज्यकाल के अन्त से संबंधित समस्त घटनाओं और मेवाड़ के राजपूतों का केवल संक्षिप्त वर्णन, एक छोटे से प्रकरण में दिया है। 'खजाइन-उल-फुतूह' में चित्तौड़ के आक्रमण संबंधी इन्हीं घटनाओं का वर्णन कुछ अस्पष्ट ढंग से लिखा मिलता है।"

(स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री—डॉ० कालिकारंजन कानूनगो, पृ० ५-६)

डॉ० कानूनगो कहते हैं कि इन दोनों ग्रन्थों में दिए गए अमीर खुसरो के चित्तौड़ वाले युद्ध-वर्णन में कहीं भी रानी पद्मिनी वाली बात का किंचित् भी संकेत नहीं मिलता है; और इसी तरह अमीर खुसरो ही के समकालीन इतिहास लेखक ज़ियाउद्दीन बर्नी ने जो 'तारीखे फिरोजसाही' नामक पुस्तक लिखी उसमें भी अलाउद्दीन के चित्तौड़ वाले युद्ध के वर्णन में, पद्मिनी का कोई उल्लेख नहीं मिलता तथा इसी तरह उसका एक अन्य समकालीन इतिहासकार इसामी भी है, जिसने 'फुतूह-उस्-सलातिन्' नामक कविता-बद्ध इतिहास लिखा है, उसने भी अलाउद्दीन के चित्तौड़ वाले युद्धवर्णन में पद्मिनी विषयक कोई उल्लेख नहीं किया। (वही, पृ० ६)

इन ग्रंथों के आधार पर डॉ० कानूनगो अपना यह तर्क पुष्ट करते हैं कि चित्तौड़ वाले युद्ध के प्रसंग में पद्मिनी की बात के पीछे कोई तथ्य होता तो इन समकालीन लेखकों ने उसका संकेत जरूर किया होता।

इस तर्क के निरसन में हम ऊपर लिख आये हैं कि ऐसे ग्रंथों में किसी वात का उल्लेख न होना उस बात की असिद्धि नहीं मानी जाती। इन लेखकों ने तो चित्तौड़ के राजा का भी नाम नहीं लिखा है, तो क्या कोई यह तर्क करे कि वहाँ के राजा का कोई नाम प्रसिद्ध नहीं था, अथवा यह तर्क किया जाय कि अमीर खुसरो, जो अपने मालिक के साथ उस लड़ाई में छह महीनों तक रहा था तिस पर भी वह, उस राजा का नाम बिल्कुल ही नहीं जान सका था; क्या ये तर्क ठीक समझे जायेंगे? इसलिए हम मानते हैं कि पद्मिनी के अनस्तित्व को सूचित करने के लिए अमीर खुसरो आदि के इन अधूरे और विसकलित उल्लेखों को प्रमाण रूप में उपस्थित करना कोई तर्क नहीं, तर्काभास है।

वास्तव में, अमीर खुसरो का वर्णन ही बहुत अस्पष्ट और बड़ा भ्रमात्मक है। इस वर्णन में परस्पर कई असंगतियां हैं और कई मिथ्या एवं मनःकल्पित बातें लिखी गई हैं।

इस विषय में सबसे पहले तो हमें यही प्रश्न विचारणीय लगता है कि अमीर खुसरो के नाम से प्रसिद्ध इन ग्रन्थों की इतिहास की दृष्टि से कितनी प्रामाणिकता मानी जाय?

हमारे दीर्घकालीन अनुसन्धानात्मक अध्ययन और अनुभव के आधार से हमारी यह मति बन गई है कि इतिहास-विषयक किसी विशिष्ट उल्लेख या प्रमाण के विषय में कोई विवादात्मक या शंकास्पद प्रश्न उठ खड़ा हो तो पहले यह जानकारी प्राप्त करना चाहिए कि प्रस्तुत विवादात्मक प्रश्न का

मूलाधार क्या है ? बुद्धिजनित इस जिज्ञासा की संतुष्टि के लिए हम यथाशक्य प्रश्न-विशेष के सर्वप्रथम मूलाधारों को टटोलना चाहते रहते हैं। द्वितीय, तृतीय श्रेणि के आधारों पर लिखे गये निर्णयों या विचारों की अपेक्षा प्रथम श्रेणी के मूलाधारों का अवलोकन और अध्ययन करने की वृति तीव्र रहती है। पर, जब वैसे आधारों की प्राप्ति की असम्भावना प्रतीत होती है तब फिर द्वितीय, तृतीय श्रेणी के आधारों के पूर्वापर सम्बन्ध की संगति लगाने का प्रयत्न करना उचित लगता है। इसी दृष्टि से, प्रस्तुत समस्या के विषय में हमने कुछ गहराई से विचार करना चाहा तो हमें अमीर खुसरो के उक्त प्रसिद्ध ग्रन्थों के बारे में कुछ मूलाधारभूत प्रमाणों के टटोलने की आवश्यकता महसूस हो गई। इसमें सबसे पहले तो हमें यह बात ज्ञात हो रही है कि डॉ० कानूनगो ने जिस विश्वास और दृढ़ता के साथ यह कथन किया है कि अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन के राज्यकाल के विषय में **दो प्रमाणभूत इतिहास-ग्रन्थ** लिखे हैं और वे दोनों अंग्रेजी अनुवाद के रूप में उपलब्ध हैं, यह कथन ही सर्वथा भ्रामक प्रतीत हो रहा है।

हमने डॉ. कानूनगो के द्वारा दी गई जानकारी की जाँच के लिए इन ग्रन्थों का पता लगाना चाहा तो, हमें यह जानने को मिला कि अमीर खुसरो के 'तारीखे-अलाई' और 'खज़ाइन्-उल्-फुतूह' ये दो अलग-अलग ग्रन्थ नहीं हैं परन्तु एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं अर्थात् एक ही ग्रन्थ इन दो नामों से प्रसिद्ध है, और इसका स्पष्ट उल्लेख अमीर खुसरो के उक्त ग्रन्थ का सर्वप्रथम परिचय कराने वाले, मुस्लिम इतिहास ग्रन्थों के महान् विद्वान् और विश्वविश्रुत अंग्रेज लेखक सर हेनरी इलियट ने अपने इस विषय के मुख्य निबन्ध में किया है। इलियट साहब ने स्व-सम्पादित 'दी हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, एज़ टोल्ड बाइ इटस् ओन हिस्टोरियनस्' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थमाला के तीसरे भाग में अमीर खुसरो की उक्त प्रसिद्ध पुस्तक का सविस्तार वर्णन और पूरा सार दिया है। इस निबन्ध का मुख्य नाम ही 'तारीखे-अलाई या खज़ाइन्-उल्-फुतूह' ऐसा दिया गया है और उसके परिचय का आरम्भ इस वाक्य से होता है कि—इन दोनों ही नामों से ज्ञात, गद्य में लिखे गये इस इतिहास के लेखक अमीर खुसरो है जिसका देहान्त १३२५ ई० सन् में हुआ था ।*

---

*सर हेनरी इलियट ने उपर्युक्त ग्रन्थ के तीसरे भाग में अमीर खुसरो की उक्त रचना का परिचय निम्न लिखित रूप में दिया है—

"इन [तारीखे अलाई अथवा खजाइन् उल्-फुतूह] दोनों ही नामों से ज्ञात, गद्य में लिखे गये इस इतिहास का लेखक अमीर खुसरो है, जिसका देहांत १३२५ ई.

इस उल्लेख से स्पष्ट है कि अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन के शासनकाल का विसकलित इतिहास देने वाली केवल एक ही पुस्तक लिखी है, जो 'खज़ाइन-उल-फुतूह' नाम की है। 'तारीखे-अलाई' नाम से उसने कोई अन्य स्वतंत्र रचना नहीं की। मालूम देता है कि कुछ पिछले मुस्लिम लेखकों ने 'खज़ाइन-उल्-फुतूह' जैसे क्लिष्ट नाम के बदले, 'तारीखे फिरोजशाही', 'तारीखे मुबारिक-शाही' जैसी पुस्तकों के नामों के समान, इस पुस्तक को भी 'तारीखे अलाई' के सरल नाम से उल्लिखित कर दिया हो और उसकी कुछ हस्तलिखित किताबों में भी इस सरल नाम का उल्लेख किया गया हो; और इसीलिये सर हेनरी इलियट को इस पुस्तक के दो नाम होने का उपर्युक्त स्पष्ट उल्लेख करना आवश्यक लगा है।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय की ओर से 'खलजी कालीन भारत' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसका उद्देश्य, खलजी वंश के शासनकाल से संबन्धित जितने इतिहास लेखक हुए हैं और उन्होंने जो-जो पुस्तकें लिखी हैं उन सब का परिचय देने के साथ, उनके ग्रन्थों के तत्संबन्धित उल्लेखों के प्रामाणिक उद्धरणों का एकत्र संग्रह कर प्रकट करना है। इस पुस्तक में अमीर खुसरो के 'खज़ाइन-उल्-फुतूह' का परिचय देकर उसके उल्लेखों का भी प्रामाणिक

सन् में हुआ था। इसमें सुल्तान् अलाउद्दीन खिलजी (जिसे उसने मुहम्मद शाह सुल्तान भी लिखा है) के आरंभिक राज्यकाल का रोचक वर्णन मिलता है, अर्थात् हिजरी ६९५ (१२९६ ई. सन्) में उसके गद्दी पर बैठने से लेकर हिजरी ७१० (१३१० ई. सन्) के अंत में मबार-विजय तक का वर्णन है। बहुत संभव है कि यह वही रचना है जिसको 'तारीखे अलाउद्दीन खिलजी' नाम से कुछ सामान्य इतिहासकारों ने उद्धृत किया है। परन्तु, यदि ऐसा ही है तो इसका सूक्ष्म अध्ययन नहीं किया गया है, क्योंकि संकलन-कर्त्ताओं का बहुत-से उपयोगी तथ्यों पर ध्यान नहीं जा पाया है।

देखने पर ज्ञात होगा कि इस छोटे-से ग्रंथ में, इसके वर्ण्य विषय से सम्बद्ध काफी जान-कारी मिलती है, विशेषकर उस समय की युद्धकला का जैसा वर्णन इसमें उपलब्ध होता है वैसा अन्य किसी ग्रंथ में नहीं मिलता है। जिस शैली में यह पुस्तक लिखी गई है वह प्रायः क्लिष्ट है, क्योंकि सारा ग्रंथ एक-के-बाद एक, काल्पनिक मिलती-जुलती बातों के सिलसिले पर निर्मित है, जैसा कि इसी लेखक की **वाकीया-नकीया** एवं **इजाजे-खुसरवी** की भूमिका में तथा **'बदर-चाची'** के गीतों में और मिरजा कातिल के वर्णनों में अथवा अन्य ऐसे ही अनेक ग्रन्थों में पाया जाता है, जहाँ वास्तविकता के बदले कल्पना की भरमार ही अधिक है।

(दी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स्—इलियट एण्ड डाउसन, भाग ३, पृ. ६७)

हिन्दी अनुवाद किया है; पर इसमें खुसरो की 'तारीखे अलाई' नामक पुस्तक का कहीं जिक्र तक नहीं किया है।

डा० पीटर हार्डी नामक अंग्रेज विद्वान् ने, "हिस्टोरियन्स् आफ मिडिवल इंडिया" नामक, एक बहुत ही अध्ययनपूर्ण पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में अमीर खुसरो की उक्त 'खज़ाइन्-उल्-फुतूह' का बड़ा ही सूक्ष्म विवेचन किया गया है। उक्त पुस्तक का क्या विषय है, इस की वर्णन शैली कैसी है और इसमें किस प्रकार ऐतिहासिक घटनाओं का क्रम और विधान दिया गया है, इत्यादि बातें बताई गई है। अन्त में, अमीर खुसरो द्वारा वर्णित या उल्लिखित ऐतिहासिक प्रसंगों का मूल्यांकन भी किया गया है। विद्वान हार्डी ने इस ग्रन्थ का परिचय देने की दृष्टि से अपने वक्तव्य का आरंभ निम्नलिखित शब्दों में किया है—

'खज़ाइन्-उल-फुतूह' अमीर खुसरो द्वारा गद्य में लिखित एक मात्र इतिहास है, जिस में संभवतः अमीर खुसरो द्वारा इतिहास विषयक विवेचन में कुछ संगत प्रमाण संकलित है क्योंकि उसके द्वारा रचित अन्य पद्यमय ऐतिहासिक रचनाओं में से कवि-कल्पित बातों की संभावना को टाला नहीं जा सकता। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के राज्यकाल में लिखे गये ऐतिहासिक वृत्तांत की दृष्टि से 'खजाइन्-उल्-फुतूह' का अधिक मूल्य है। (उक्त पुस्तक का पृष्ठ ७६)

'खलजी कालीन भारत' नामक पुस्तक में, पृष्ठ १५५ से १७० तक 'खज़ाइन्-उल्-फुतूह' के उद्धरण दिये गये हैं। इसके परिचय रूप, प्रारम्भ में, इन उद्धरणों के अनुवादक, मो० सैयद अतहर अब्बास रिजवी ने प्रस्तुत ग्रन्थ का परिचय देने की दृष्टि से प्रारंभ में निम्न लिखित पंक्तियां लिखी हैं—

'इस (खजाइन्-उल्-फुतूह) में अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन खलजी की अनेक विजयों एवं उसके शासन-प्रबन्ध का उल्लेख किया है। खुसरो ने इस पुस्तक में बड़ी आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है। यह पुस्तक अलीगढ़ सुल्तानिया हिस्टोरिकल सोसाइटी द्वारा १९२७ ई० में प्रकाशित हो चुकी है। इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रोफेसर मुहम्मद हबीब ने किया है, जो तारापोरवाला, बंबई द्वारा १९३१ ई. में प्रकाशित हो चुका हैं। इस अंग्रेजी अनुवाद की अशुद्धियां हाफिज महमूद शीराजी ने ओरियन्टल कालिज मैगजीन लाहोर, १९३५-३६ ई. में प्रकाशित की। हिन्दी अनुवाद १९२७ ई. की प्रकाशित पुस्तक से किया गया है किन्तु इस संस्करण में बड़ी अशुद्धियां हैं, अतः हस्तलिखित प्रतियों का भी, जो कि अलीगढ़ विश्वविद्यालय तथा रामपुर में वर्तमान है, प्रयोग किया गया है।'

ऊपर दिये गये इन उल्लेखों के देखने से ज्ञात होता है कि अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन के राज्यशासन के बारे में केवल एक ही इतिहास-गर्भित पुस्तक

लिखी थी, न कि, जैसा कि डॉ० कानूनगो का जोरदार कथन है कि, उसने 'दो प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ' लिखे थे। न मालूम मुस्लिम इतिहासों और मुस्लिम लेखकों के वर्णनों का गम्भीर अध्ययन करने वाले डॉ० कानूनगो जैसे विद्वान् ने ऐसा कथन किस आधार पर किया है? जब तक इसका कोई विश्वस्त प्रमाण हमें ज्ञात नहीं होता तब तक हम तो डॉ० कानूनगो के इस मूलाधारभूत उल्लेख को सर्वथा भ्रमात्मक ही मानेंगे।

*

अब हम आगे अमीर खुसरो के इस कथन पर विचार करना चाहते हैं जो उसने चित्तौड़ के युद्ध के बारे में अपनी 'खज़ाइन्-उल्-फ़ुतूह' में एक प्रत्यक्षदर्शी की हैसियत से किया है।

'खजाइन्-उल्-फ़ुतूह' का जो परिचय हमने सर हेनरी इलियट, डॉ० पी० हार्डी एवं प्रो० रिज़वी के लेखों पर से दिया है उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह मूल पुस्तक फारसी भाषा में बहुत ही क्लिष्ट या जटिल शैली में लिखी गई है। उसके वर्णन कृत्रिम शब्दाडंबर से भरे हुए, उपमा और अलंकारों से बेहद लदे पड़े हैं। फारसी भाषा के मर्मज्ञ विद्वानों को भी, उसके कथनों का ठीक-ठीक अर्थ समझने में बड़ी भूलें होती रहती हैं। ऐसी स्थिति में उसके उल्लेखों को ऐतिहासिक दृष्टि से कितने अंश में प्रमाणभूत माना जाय, यह एक विशेष विचारणीय प्रश्न है। यद्यपि 'खजाइन्-उल्-फ़ुतूह' में अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन की विजयों के बारे में कुछ बातें ऐसी लिखी हैं जो वास्तविक घटना का तथ्य सूचित करती हैं; पर उसने उन ऐतिहासिक घटनाओं का क्रम-बद्ध तथा व्यवस्थित वर्णन करने की दृष्टि से इस ग्रन्थ की रचना नहीं की है। उसने तो अलाउद्दीन को खुश करने के लिये, उसकी विजयों का खूब बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करने वाला एक अत्यंत शब्दाडंबरपूर्ण तथा अतिशयोक्ति-प्रचुर एवं कृत्रिम कवि-कल्पनाओं से भरा हुआ काव्य लिखा है। जैसा कि अपने वर्ण्य नायक की स्तुति में लिखे गये स्तुति-प्रधान काव्यों में कवि लोग वास्तविक तथ्यों के स्वरूप को ऐसे अतिशयोक्ति पूर्ण वचनों और वर्णनों से इस तरह मँढ़ते रहते हैं जिससे उसमें ऐतिह्य तथ्य का मूल स्वरूप खोज निकालना बड़ा कठिन हो जाता है। अमीर खुसरो का यह काव्य भी उसी कोटि का है। अतः सर् हेनरी इलियट ने इसका मूल्यांकन करते हुए स्पष्ट लिखा है कि—'यह ग्रन्थ, वास्तव में इतिहास की अपेक्षा काव्य अधिक है। सर इलियट के इस अभिप्राय को दोहराते हुए प्रो० डाउसन ने लिखा है कि* 'तारीखे अलाई' इतिहास की अपेक्षा काव्य अधिक है; परन्तु

*प्रो० डाउसन का प्राक्कथन, उपर्युक्त पुस्तक, भाग ३, पृ० १

इसके साथ अमीर खुसरो का सम्मानित नाम जुड़ा हुआ है और इसमें ऐसी विशेष विवरणात्मक बातें कही गई हैं जिनकी इतिहास के अभ्यासी उपेक्षा नहीं कर सकते, यद्यपि उनमें से निष्कर्ष निकालने के लिये उनको पूर्ण सावधानी के साथ परिश्रम करना पड़ेगा।'

इन विशिष्ट इतिहासविदों के कथन से स्पष्ट है कि अमीर खुसरो का प्रस्तुत ग्रन्थ इतिहास न हो कर काव्य है। इसमें इतिहास के प्रसंगों का काव्य की शैली में वर्णन है जो अतिरंजित, अतिशयोक्तिपूर्ण, शब्दाडम्बर-आच्छन्न होकर कवि-कल्पना का प्रकर्ष दिखलाने की दृष्टि से आलेखित किया गया है। ऐसी स्थिति में डॉ० कानूनगो कैसे इस ग्रंथ को एक प्रामाणिक इतिहास मानते हैं, यह हमारी समझ में नहीं आता। अमीर खुसरो ने 'खज़ाइन्-उल्-फ़ुतूह' में चित्तौड़-युद्ध का वर्णन किस रूप में दिया है, इसका परिचय कराने के लिए हम यहां कुछ विशेष अधिकारी विद्वानों द्वारा दिये गये अवतरणों को उद्धृत करते हैं।

इनमें सबसे प्रथम सर इलियट ने उक्त पुस्तक में जो अवतरण दिया है, वह इस प्रकार है।

[चित्तौड़-विजय-वर्णन] "अल हिजरी ७०२ के ८ वें जुमादस-सानी सोमवार (२८ जनवरी, १३०३ ई० सन्) के दिन ऊंची ध्वनि में बजते नगाड़ों से चित्तौड़ को फतह करने के उद्देश्य से, दिल्ली से शाही सेना के प्रयाण की घोषणा की गई। लेखक (अमीर खुसरो) इस अभियान में साथ था। सोमवार, मुहर्रम की ग्यारहवीं अल हिजरी ७०३ (२६ अगस्त, १३०३ ई० सन्) को किला ले लिया गया। राय भाग निकला, परन्तु बाद में उसने अपने को समर्पण कर दिया और वह तलवार की मार से बच गया। हिन्दुओं का कहना है कि जहां भी पीतल का बर्तन होता है वहां बिजली गिरती है और राय का चेहरा भय के मारे इसी प्रकार (पीतल की तरह) पीला पड़ गया था।

"तीस हजार हिन्दुओं के कत्ले-आम का आदेश देकर, उसने चित्तौड़ की सरकार अपने लड़के खिज़्र खाँ को सौंप दी और उसका नाम खिज़्राबाद रख दिया। उसने उसको एक लाल रंग का सिंहासन, एक सुनहरी चोगा, हरे और काले रंग के दो ध्वज देकर, लाल मणियाँ और पन्ने उस पर बरसाए। फिर, वह वापस दिल्ली लौट आया। उस ईश्वर की प्रशंसा करता हूँ कि जिसने इस्लाम के दायरे से धर्मद्रोहियों को उस पार उतार देने वाली तलवार के द्वारा हिन्द के सभी राजाओं के कत्ले-आम की आज्ञा प्रदान कर इस्लाम के दायरे से

बाहर कर दिया। यदि संयोग से धार्मिक मतभेदों को बढ़ावा देने वाले यहाँ मौजूद होते तो शुद्ध सुन्नी ईश्वर के इस खलीफा के नाम पर कसम खा लेते कि वामपंथी होने का कोई स्थान नहीं।"

('दी हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड वाइ इट्स ओन हिस्टोरियनस्'—इलियट एण्ड डाउसन, भाग ३, पृ० ७६-७७, नई आवृत्ति, किताब महल प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद।)

'खज़ाइन्-उल्-फुतूह' के इसी वर्णन का 'खलजीकालीन भारत' नामक पुस्तक में, प्रो० रिजवी ने मूल फारसी से जो हिन्दी में अनुवाद दिया है, उसमें और सर इलियट के अवतरण में कुछ भेद मालूम देता है। प्रो० रिजवी का यह अवतरण इस प्रकार है—

"**चित्तौड़ की विजय**—सोमवार ८ जमादी उस्सानी ७०२ हिजरी (२८ जनवरी १३०३ ई०) को सुल्तान ने चित्तौड़ की विजय का दृढ़ संकल्प कर लिया। देहली से झण्डे के चांद चल पड़े। शाही काला चत्र बादलों तक पहुंच रहा था। सुल्तान सेना लेकर चित्तौड़ पर पहुंच गया। सेना के दोनों बाजुओं के लिए यह आदेश हुआ कि वे किले के दोनों ओर अपने शिविर लगा दें। शाही सेना दो मास तक आक्रमण करती रही किन्तु विजय प्राप्त न हो सकी। चत्रवारी (चित्तौड़ी) नामक पहाड़ी पर सुल्तान अपना श्वेत चत्र सूर्य के समान लगाता और सेना का प्रबंध करता था। वह पूर्वी पहलवानों को पश्चिमी पहलवानों से लड़ाता रहा। सोमवार ११ मुहर्रम ७०३ हिजरी (२५ अगस्त १३०३ ई०) को सुल्तान उस किले में, जहां चिड़ियां भी प्रविष्ट नहीं हो सकती थीं, दाखिल हो गया। उसका दास अमीर खुसरो भी उसके साथ था। राय सुल्तान की सेवा में क्षमा याचना के लिए उपस्थित हो गया। उसने राय को कोई हानि नहीं पहुंचाई किन्तु उसके क्रोध द्वारा ३० हजार हिंदुओं की हत्या हो गई। जब शाही क्रोध ने समस्त मुकद्दमों का विनाश कर दिया और उस भूमि से दुरंगी का अन्त कर दिया तो उसने कृषि करने वाली प्रजा को, जिनमें कोई भी कांटा नहीं होता, प्रसन्न कर दिया। चित्तौड़ का नाम खिज्राबाद रक्खा गया। खिज्र खां के सिर पर लाल चत्र रक्खा गया। उसने ऐसे वस्त्र धारण किये जिनमें जवाहरात जड़े हुए थे। दो झण्डे जो, काले तथा हरे रंग के थे, लगाए गए। उसका दरबार दो रंग के दूरवाशों से सजाया गया। इस प्रकार वह खिज्र खां को सम्मानित करने के उपरान्त सीरी की ओर रवाना हो गया। २० मुहर्रम के पश्चात् शाही झण्डों को देहली की ओर प्रस्थान करने का आदेश दिया गया।" (खलजीकालीन भारत, पृ० ६४-६५)

सर इलियट और प्रो० रिजवी के ये अवतरण अमीर खुसरो के कथन का सार बतलाने वाले हैं। उसकी आलंकारिक शैली और भाषा का आभास इनमें नहीं मिलता। प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासविद् विद्वान् प्रो० हबीब ने, 'खजाइन्-उल्-फतूह' का, शब्दशः अंग्रेजी भाषान्तर किया है जो मद्रास से प्रसिद्ध होने वाले 'जर्नल ऑफ दी इण्डियन हिस्ट्री' नामक पत्र के सन् १९२९ वाले भाग में छपा है। खुसरो के मूल शब्द और भाव का इस अनुवाद से अच्छा परिचय मिलता है। चित्तौड़ के युद्ध के विषय में उसने कैसी भाषा और कैसे भाव व्यक्त किये हैं इसका कुछ वास्तविक ज्ञान प्रो० हबीब के भाषान्तर से प्राप्त होने जैसा है, अतः हम यहां पर उसको भी (हिन्दी रूपान्तर के रूप में) उद्धृत कर देना चाहते हैं। प्रो० हबीब का विवरण इस प्रकार है—

"यह चित्तौड़ की विजय का वृत्तांत है, जो पृथ्वी पर आकाश की तरह छाया हुआ है।"

'८ जमादि उस् सानी, हिजरी सन् ७०२, सोमवार के दिन विश्वविजयी (अलाउद्दीन) ने चित्तौड़ जीतने का निश्चय किया। उसने उच्च ध्वनि करने वाले नगाड़े बजाए जाने का आदेश दिया। अर्द्ध-चंद्रांकित शाही झण्डा दिल्ली से आगे बढ़ा और शाही छत्र धुंधले बादलों तक ऊँचा उठाया गया। नगाड़ों की आवाज ने आकाश के गुम्बज तक पहुँच कर बादशाह के दृढ़ निश्चय का शुभ समाचार फैलाया। आखिर में, चित्तौड़ की सीमा पर जा पहुँचे। शाही खेमा, बादलों को जिसका अस्तर माना जा सकता है, उस सीमा की दो नदियों के बीच लगाया गया।* सेना के उत्साह ने दरिया के दोनों किनारों को भूचाल की तरह झकझोर डाला और सैनिकों के कदमों से उठी हुई धूल ने दोनों नदियों को पैदल पार कर लेने योग्य बना दिया। सेना के दोनों पक्षों को अपने-अपने तम्बू एक के बाद एक करके किले के दोनों तरफ तानने का आदेश हुआ। ऐसा लगता था कि जल भरे बादल पर्वत की तलहटी में उतर आए हैं। दो महीनों तक तलवारों की बाढ़ पहाड़ की कमर तक चढ़ी, पर आगे न बढ़ सकी। किला बड़ा आलीशान था, जिससे ओलों की आंधी तक नहीं टकरा सकती थी। क्योंकि यदि बाढ़ स्वयं चोटी से तेज वह निकले, तो भी पर्वत की तलहटी तक पहुँचने में उसे पूरा दिन लगेगा।

'इसके बावजूद कि यह अलौकिक दुर्ग जिसका मस्तक आसमान से भी ऊपर उठा हुआ था, मगरबियों के पत्थरों की मार से धरती पर झुक ही जाता, परंतु

*गंभीरी और बेढ़च।

ईसा मसीह ने बैतुल मा'मूर (मक्का) से मोहम्मद के धर्म की इमारत बन जाने की खुशखबरी भेजी थी, जिसके फल-स्वरूप इमारत के पत्थर वैसे के वैसे ही बने रहे और अपना भेद अपने में छिपाए रहे[1]। छतर-वारी (चित्तौड़ी) नामक एक पर्वत पर बादशाह ने अपना सफेद रंग का छत्र, प्रतिदिन दिखाई देने वाले सूर्य की भाँति स्थापित किया, और जैसा कि बादशाहों का रिवाज है, अपनी फौज के प्रशासन की देखभाल करता रहा। उसने पूर्वीय पहलवानों को पाश्चात्यों (मगरबियों) से भिड़ने को ललकारा। अन्य योद्धा मगरबियों के पल्लों पर भारी पत्थर रखने लगे क्योंकि मगरबियों की ताकत का पता लगाने के लिये उनके पल्लों के सिवा और कोई चीज नहीं होती। प्रत्येक योद्धा अपनी शक्ति से पत्थर उठाते समय अपने हाथ को एक खम्भा-सा बना लेता था क्योंकि पर्वत पर खम्भे नहीं थे। सुलेमान की सेना ने, डेविड की सेना की भाँति, किले पर वार किए जिससे उन्हें शेबा का स्मरण हो आया। ११ मुहर्रम हिजरी सन् ७०३ सोमवार के दिन इस युग का सुलेमान (अलाउद्दीन) अपने ऊँचे सिंहासन पर बैठ कर उस किले में दाखिल हुआ जिसकी बुलन्दी तक परिन्दे भी उड़ान नहीं भर सकते थे। खाकसार (अमीर खुसरो), जो इस सुलेमान (अलाउद्दीन) का पक्षी है, उसके साथ था। वे बार-बार "हुदहुद ! हुदहुद !" चिल्ला रहे थे; किन्तु, मैं (अमीर खुसरो) हाजिर नहीं हुआ, क्योंकि मुझे भय था कि शायद सुल्तान गुस्से में पूछ बैठे "क्या बात है, हुदहुद क्यों नहीं दिखाई पड़ा ? क्या वह भी अनुपस्थितों में है ?" और यदि वह मेरी अनुपस्थिति की 'ठीक कैफियत मांगे,' तो मैं क्या बहाना बनाऊंगा ? यदि गुस्से में आकर बादशाह कह दे कि "मैं तुझे दण्ड दूंगा," तो बेचारा यह पक्षी उसको सहन करने का कैसे हौंसला कर सकेगा ?[2] जब

१. अर्थात् यद्यपि हाथ में ली हुई आक्रामक तलवार कारगर न हो सकी, फिर भी अपने 'मगरबियों' द्वारा दुर्ग को गिरा देना अलाउद्दीन की शक्ति में था। परन्तु, उसने यह आध्यात्मिक सूचना प्राप्त होने पर कि आगे चल कर यह इमारत मुस्लिम हो जावेगी, कोई कदम नहीं उठाया। इस कारण उसको तहस-नहस करना बहुत विवेकहीन बात होती। फिर, यह बात भी थी कि दुर्ग के पत्थर हर निर्जीव पदार्थ की भाँति सच्चे मुसलमान होने के नाते समस्त मुसलमानों की तरह आपस में संगठित थे। वे भविष्य को जानते थे, परन्तु इस बात को अपने ही तक इसलिए सीमित रक्खे थे कि कहीं रुष्ट होकर राजपूत अपने विश्वासघाती दुर्ग को गिरा न दें।

२. कुरान की प्रसिद्ध कथा की ओर संकेत किया गया है (अध्याय २७, खण्ड २)। 'हुदहुद' एक पक्षी था, जो सोलोमन के पास शेबा की रानी बालक़ीस (Balquis) का समाचार लाता था। सोलोमन की शेबा की इस उपमा से प्रसिद्ध पद्मिनी का ही स्पष्ट संकेत मिलता है।

धरती और समन्दर के बादशाह का सफेद बादल (के समान खेमा) इस ऊंचे पहाड़ की चोटी पर दिखाई दिया, तब बरसात का मौसम था। सुल्तान के क्रोध की बिजली से आहत होकर राय के हाथ-पांव झुलस गए और पत्थर के द्वार से वह इस तरह उछल कर निकला जैसे पत्थर से आग निकलती है। बरसते पानी में ही कूद कर वह शाही शामियाने की तरफ दौड़ा। इस तरह उसने तलवार की बिजली गिरने से अपने को बचा लिया। हिन्दू कहते हैं कि बिजली पीतल के बर्तन पर अवश्य गिरती है और राय का मुंह भय के मारे पीतल-सा पीला पड़ गया था। यह निश्चित है कि वह तलवार और बाणों की बिजली से सुरक्षित न रह पाता यदि वह शाही शामियाने के द्वार तक न पहुंचता।

'हरी तलवारों के भय से पीला चेहरा लिए राय ने लाल छत्र की शरण ग्रहण की उस समय भी वह महान् बादशाह (जिसकी खुशहाली सदा बनी रहे) गुस्से से लाल हो रहा था। परन्तु, जब उसने शाकाहारी (घास खाने वाले) राय को शाही खेमे के अन्दर रौंदी गई और मुरझाई हुई घास की तरह काँपते देखा तो यद्यपि राय एक बागी था फिर भी शाही मेहरबानी की ठण्डी हवा ने उस पर हवा का असर नहीं होने दिया। बादशाह के गुस्से का सारा गुबार अन्य बागियों पर निकला। उसने आदेश दिया कि जहां कहीं भी कोई हरा (जिन्दा) हिन्दू पाया जाय उसे सूखी घास की तरह काट दिया जाय। इस कठोर आदेश के फलस्वरूप तीस हजार हिन्दुओं का एक ही दिन में कत्ले-आम कर दिया गया। ऐसा लगता था कि खिज्राबाद के चरागाहों में घास के बजाय आदमी उग आये थे। शाही गुस्से की हवा ने जब समस्त मुक्कदमों[1] को उखाड़ फेंका, तो उसने उस भूमि को दो रंगों से मुक्त कर दिया, रैय्यत और किसानों की इमदाद की, जिनमें कोई भी कांटा उगने के लिए सिर नहीं उठा सकता था। इस आसमानी भवन की जड़ें और शाखाएँ विशाल साम्राज्य के विशाल वृक्ष खिज्र खां के हवाले कर दी गईं और उसका नाम खिज्राबाद रक्खा गया। लाल छत्र खिज्र खां के सिर पर लगाया गया जो नीले आकाश पर लाल जन्नत-सा मालूम हुआ। उसने बाइज्जत खिलअत पहनी जो जवाहिरात से इस तरह सजी हुई थी जैसे आकाश सितारों से जड़ा हुआ हो। काले और हरे रंग के दो ध्वज उसके पास ही इतने ऊँचे लगाए गए कि शनि और सूर्य दोनों ही ग्रह उदास और शर्मिन्दा हो गए। इसके अलावा, उसके दरबार को दो रंग के दूरबाश से सजाया गया जिसमें प्रत्येक बत्ती सूर्य की जिह्वा-सी मालूम दे रही थी। इस

१. गांव के मुखिया, जो राजपूतों में सैनिक अधिकारी भी होते थे।

प्रकार मणियों, हीरों और लालों को बरसा कर बादशाह ने अपने लड़के की हस्ती को खुशहाल और बाइज्जत बनाया। तत्पश्चात्, खिज्रखाँ और खिज्राबाद के मामलों से मुक्त होकर उसने अपनी विजयी बागडोर को सम्हाल कर खिज्राबाद के हरे-भरे चरागाहों से सीरी की तरफ रकाब बढाई। मुहर्रम[1] की दसवीं तारीख के बाद पैगंबर के उस उत्तराधिकारी के ध्वज को (जो ऊँचा और ऊँचा उठता रहे); जो हिन्दुओं के सर पर चमत्कारपूर्ण ढंग के हावी था, इस्लाम के नगर दिल्ली की तरफ बढ़ने का आदेश दिया गया। उस (बादशाह) ने उन सब हिन्दुओं को कत्ल करवा दिया, जो इस्लाम के दायरे से बाहर थे। यह उसकी कुफ्र का सफाया करने वाली तलवार (जुल्फिकार) का एक ऐसा बड़ा काम था कि जिसकी वजह से, उस जमीन में सिर्फ (नाममात्र को) अपने हुकूक की मांग करने वाले कट्टर सुन्नी भी उस (अल्लाउद्दीन) के नाम का खुतबा पढ़ना पसंद करते।[2]

अमीर खुसरो के खजाइन्-उल्-फतूह-गत चित्तौड़-युद्ध-विषयक जो उपर्युक्त तीन लेखकों के भिन्न-भिन्न अवतरण दिऐ गए हैं उनका परस्पर मिलान करने पर ज्ञात होगा कि—इलियट साहब के अवतरण का विवरण सबसे अधिक संक्षिप्त है, प्रो. रिजवी का विवरण कुछ विस्तृत है; पर ये दोनों अवतरण अमीर खुसरो के कथन का सारार्थ मात्र बतलाने वाले हैं, उसके पूरे भाव को प्रकट नहीं करते। जब कि प्रो. हबीब का अवतरण खुसरो के शब्दों और भाव का प्रायः पूरा अनुवाद है। यद्यपि ऐतिह्य तथ्य की दृष्टि से इन तीनों अवतरणों में कोई विशेष भेद वाली बात नजर नहीं आती तथापि एक उल्लेख ऐसा है जो विचारणीय मालूम देता है, और वह यह है कि युद्ध के अन्त में चित्तौड़ के राजा की स्थिति क्या हुई। इस बात का सूचन करने वाला उल्लेख इलियट साहब के अवतरण में इस प्रकार है कि—"राय भाग निकला पर बाद में उसने अपने को समर्पण कर दिया।" प्रो. रिजवी के अवतरण में राजा के भाग निकलने का जिक्र नहीं है। इसमें केवल इतना ही कहा गया है कि "राय सुलतान की सेवा में क्षमा-याचना के लिये उपस्थित हो गया।"

---

१. ईद से भी आनन्ददायक मुहर्रम की दसवीं तारीख का उल्लेख। खुसरो पहले कह चुका है कि अलाउद्दीन मुहर्रम की ग्यारहवीं तारीख को चित्तौड़ के दुर्ग में प्रविष्ट हुआ। यहाँ पर यह लिखा है कि सेना दिल्ली के लिए मुहर्रम की दसवीं तारीख के बाद रवाना हुई। वास्तव में, दोनों कथनों में कोई असंगति नहीं है; मुहर्रम की दसवीं तारीख का इस अंश में उल्लेख मात्र करना था।

२. जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, जि० ८; भा० ३; पृ० ३६९-३७२.

इलियट और रिजवी दोनों के अवतरण मूल फारसी ग्रंथ से अनूदित हैं तब इस कथन में ऐसी परस्पर विसंगति-सूचक बात का उल्लेख किस तरह हुआ है, यह हमारी समझ में नहीं आता। हम स्वयं फारसी भाषा नहीं जानते हैं इसलिए मूल ग्रंथ का अध्ययन कर उसका वास्तविक निष्कर्ष जानने में असमर्थ हैं। इस संदिग्ध कथन के पढ़ने से मालूम देता है कि यह उल्लेख स्पष्ट नहीं है और खुसरो के शब्दाडंबरपूर्ण कथन का वास्तविक तात्पर्य क्या है, यह अन्वेषणीय है। 'राजा का भाग निकलना और बाद में शरण आ जाना,' तथा 'राजा का क्षमा-याचना के लिए उपस्थित हो जाना', इन दो विभिन्न स्थितियों के सूचक कथनों में तो उस सारी घटना का बड़ा रहस्य छिपा होना सम्भावित हो सकता है। पद्मिनी-कथा-विषयक पूरे वृत्तान्त की अनुल्लिखित घटना का रहस्यमय संकेत इस अस्पष्ट और गोलमाल कथन वाले खुसरो के शब्दजाल की तह में दबा हुआ हो सकता है। इस विषय में हम कुछ आगे विचार करेंगे।

प्रो० हबीब के अवतरण से इस संदिग्ध और अस्पष्ट कथन का तात्पर्य ऐसा निकलता है कि—सुलतान का किले में प्रवेश हो जाने वाली स्थिति को देख कर राय क्रोध के मारे एड़ी से चोटी तक जल गया और अपने किले से आग के तनखे की तरह बाहर निकल आया। बरसते पानी में सटपटाता हुआ सुलतान के डेरे तक पहुंच गया, जहां वह उस (सुलतान) की तलवार से कत्ल होने से बच गया। प्रो. हबीब के इस भावार्थ में राय का भाग निकलना अथवा क्षमा-याचना के लिए सुलतान की शरण में उपस्थित हो जाने वाले भाव का कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता। इस भावार्थ से तो केवल इतना ही तथ्य प्रतीत होता है कि अलाउद्दीन के किला कब्जे कर लेने की स्थिति में पहुँच जाने पर, राजा किला छोड़ कर बाहर निकल आया और मारकाट करता हुआ सुलतान के खेमे तक पहुंच गया, जहां वह पकड़ लिया गया, परन्तु मारा नहीं गया। इस रहस्यभरी वात के संकेत अन्यान्य उल्लेखों से प्राप्त हो रहे हैं, जो आगे यथा-स्थान सूचित किये जायेंगे।

अमीर खुसरो के शब्दजाल का जो भाव प्रो. हबीब ने अपने शब्दों में उतारा है उसी भाव को डॉ. पीटर हार्डी ने अपने शब्दों में इस प्रकार अवतारित किया है—

"मुख्तलिफ[1] रंगों का जिक्र! जिस रोज सब्ज तलवारों के खौफ से पीले

१. अमीर खुसरो अपने शब्दाडंबर का प्रदर्शन करने की दृष्टि से, इस वर्णन में, भिन्न-भिन्न रंग वाले शब्दों का येन केन प्रकारेण प्रयोग करना चाहता है न कि इतिहास के लक्ष्य का प्रतिपादन करना।

चेहरे वाले रायों* उस फतहयाब सुर्ख दरबार में पनाह ली तो संजारे-हुकूमत (वह हमेशा कामयाबी के तख्त पर नशीन रहे और उसकी बहादुरी की शोहरत हमेशा सर-सब्ज रहे) उस वक्त भी गुस्से की सुर्खी से तमतमा रहा था। जब उसने हरी घास खाने वाले रायों को पैरों से कुचली हुई और मुरझाई हुई घास के तिनकों की तरह शाही खेमें में डर से कांपते हुए देखा तो, हालाँकि राय बागी था फिर भी, उसके शाही अंदाज की चाँदी (श्वेतता) ने उस पर कोई आंच न आने दी। उसके गुस्से की, जला देने वाली हवा ने दूसरे बागियों का रुख पकड़ा और उसने हुक्म दिया कि जहाँ भी कोई काला हिन्दू पाया जाय उसको सूखी घास की तरह काट दिया जाय।" (हिस्टोरियन्स ऑफ मेडिवल इण्डिया; पी० हार्डी, पृ० ८०)

अमीर खुसरो के कथन को सुलतान द्वारा किये गये चित्तौड़-युद्ध के बारे में जो मुख्य आधार माना जा रहा है वह कितना संदिग्ध और अस्पष्ट है, यह इन अवतरणों से अच्छी तरह ज्ञात हो रहा है। खुसरो बादशाह की फतह की बाँग पुकारता हुआ, चित्तौड़ के किले को सुलतान के बेटे खिज्रखां को दे देना और उस का बड़ा सम्मान करना आदि बातें तो बहुत लच्छेदार शब्दों में आलेखित करता है, पर उस राय का, जो बादशाह की शरण में आ गया था, फिर क्या हुआ, इस बारे में वह एक शब्द भी नहीं कहता है।

जियाउद्दीन बर्नी चित्तौड़ के युद्ध के बारे में खुसरो की तरह कोई खास वर्णन नहीं लिखता। वह केवल एक जगह इतना ही लिखता है कि—"सुल्तान अलाउद्दीन ने पुनः शहर देहली से सेना लेकर चित्तौड़ पर चढ़ाई की, चित्तौड़ को घेर लिया और शीघ्रातिशीघ्र किले पर विजय प्राप्त करके शहर लौट आया। सुल्तान के वापस आ जाने पर मुगलों के आक्रमण का भय पुनः आरंभ हो गया।" (खलजी कालीन भारत—पृ० ७६)

पर इस प्रसंग में बर्नी दो बार यह कथन करता है कि चित्तौड़ के युद्ध में सुल्तान को सैनिक दृष्टि से बड़ी हानि पहुँची थी; यथा—

"जिस वर्ष सुल्तान अलाउद्दीन चित्तौड़ की विजय के उपरान्त देहली लौटा

---

* डॉ० हार्डी ने इस अवतरण में दो जगह Rāis ऐसे बहुवचन का प्रयोग किया है, जो विचारणीय है। क्या खुसरो के मूल लेख में ही राय शब्द बहुवचनान्त है या अनुवादक ने ऐसे शब्द का प्रयोग किया है? यदि खुसरो ने बहुवचन का प्रयोग किया है तो उसका कुछ अर्थ है या यों ही लिख मारा है? चित्तौड़ का राय तो एक ही होना चाहिये।

उसी वर्ष उस सेना को जो कि सुल्तान के साथ वर्षा ऋतु में विजय के लिए गई थी बड़ी क्षति पहुँची........"

"उस वर्ष सेना पर यह दुर्घटना पड़ गई कि सुल्तान अलाउद्दीन को चित्तौड़ की विजय से लौटने के उपरांत इतना समय न मिल सका था कि देहली की सेना के घोड़े तथा अस्त्र सुव्यवस्थित कर सकता। चित्तौड़ की सेना को बड़ी क्षति पहुँची थी।" (वही, पृ० ७६)

अमीर खुसरो के कथन में इस प्रकार सेना की क्षति के विषय में किंचित् भी संकेत नहीं है। वह तो बादशाह की विजयी सेना का दिल्ली की ओर प्रस्थान करने का वैसे ही शब्दों में उल्लेख करता है जैसे वह विजय के लिये दिल्ली से चली थी। वह तो सुलतान का भाट था, इसलिए उसकी हानि की बात कैसे उल्लिखित कर सकता था ?

अमीर खुसरो ने अपनी 'देवलरानी और खिज्रखां' वाली प्रेम कहानी में भी संक्षेप में चित्तौड़ युद्ध का वर्णन किया है, जिसमें वह चित्तौड़ के युद्ध का समय केवल दो ही महीने बतलाता है न कि खजाइन्-उल्-फतूह की तरह छः महीने का। अमीर खुसरो का यह कथन इस प्रकार है—

'फिर, उस (सुलतान अलाउद्दीन) ने शाही लवाजमें सहित चित्तौड़ पर चढ़ाई की और एक ही धावे में उसे अपने अधीन कर लिया। वहां भी विशाल सेना सहित राय मौजूद था, जो दरअसल समस्त हिंदू राजाओं में सर्वश्रेष्ठ था; परन्तु, बादशाह को अधिक समय नष्ट न करना पड़ा; दो ही महीनों में किले को फतह कर लिया। यह धावा इतना प्रबल था कि शनिग्रह को भी अपने उपग्रहों की सुरक्षा की चिंता हो गई। उसका नाम खिज्राबाद रक्खा गया और खिज्रखाँ को भेंट कर दिया गया। हिन्दुओं का स्वर्ग (चित्तौड़) एक अद्‌भुत दुर्ग है और इसके चारों तरफ चश्में और चरागाह हैं।" (देवल रानी)

(प्रो० हबीब द्वारा अनूदित, 'जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, जिल्द ८, भा. ३, पृ. ३७२)

अमीर खुसरो का यह वर्णन भी विचारणीय है। 'खजाइन्-उल्-फतूह' वाले वर्णन में तो उसका कथन है कि–चित्तौड़ पहुँचने पर सुलतान की सेना दो महीनों तक तो किले की (कमर-स्वरूप) तलहटी तक भी न पहुंच सकी और बाद में बड़ी मुसीबतों को उठाते हुए चित्तौड़ी नाम की छोटी पहाड़ी पर जाकर सुलतान ने डेरा डाला और फिर वहाँ से किले को तोड़ कर वह अन्दर दाखिल हुआ। पर, इस वर्णन में तो वह कहता है कि एक ही धावे में सुलतान ने दो ही महीनों में किला फतह कर लिया। ऐसे भयंकर युद्ध के बारे में मानों दो

महीनों और छः महीनों के समय का अन्तर कोई नगण्य जैसी बात हो। एक अथवा दो ही दिन के अन्तर में ऐसे युद्धों की क्या परिणति हो सकती है, वह अमीर खुसरो के ज्ञान के बाहर की चीज तो नहीं होनी चाहिए; फिर उसके कथन में वैसी मुख्य घटना सूचक हकीकत में ऐसी विसंगति क्यों मालूम देती है ? इसका निष्कर्ष तो यही निकलता है कि खुसरो के कथन को सर्वथा प्रमाणभूत मानना ऐतिहासिक तथ्यान्वेषण के सिद्धांत की उपेक्षा करना है। पद्मिनी की कथा के अस्तित्व या अनस्तित्व का निर्धारण करने के लिए अमीर खुसरो या उसके जैसे बर्नी आदि विधर्मी इतिहास लेखकों के कथनों को ही विशेष प्रमाण-भूत मानने का जो डॉ० कानूनगो का तर्क है वह सर्वथा बल-हीन है।

अलाउद्दीन की स्त्री-लम्पटता सुप्रसिद्ध है। वह अच्छी अच्छी मुसलिम स्त्रियों को भी अपनी दुष्ट कामवासना की तृप्ति के लिये फंसाया करता था। उसके इस दुराचारमय व्यवहार की तरफ उसकी मुख्य बीबी की भी बड़ी तिरस्कारपूर्ण भावना थी और इसीलिये वह अपनी बड़ी बीबी से रुष्ट और दूर रहा करता था। इसका एक दिलचस्प वर्णन 'जफरुल वालेह वे मुजफ्फर वालेह' नामक अरबी तवारिख में दिया गया है, जिसका लेखक अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन उमर अल-मक्की अल-आसफी, उलुगखानी है। यह वर्णन इस प्रकार है—

"अलाउद्दीन का अपने एक चचा की पुत्री से सम्बन्ध था। इस बात से उसकी धर्मपत्नी खिन्न रहती थी। वह (अलाउद्दीन) यह बात अपने चचा (जलालुद्दीन) के कारण अपनी धर्मपत्नी से छिपाता था। उस लड़की का नाम महरू था। यह अलप खाँ की बहिन थी। जब उस चचा (जलालुद्दीन) की पुत्री को यह सूचना मिली तो वह बड़ी हैरान तथा रुष्ट हुई; किन्तु अला-उद्दीन ने यह बात अस्वीकार की। उसकी स्त्री ने कुछ दरवान इस बात की देखरेख के लिये नियुक्त कर दिये कि वे कहां मिलते हैं। संयोग से, वे लोग एक उद्यान में एकत्रित हुये। जब वे लोग पूर्णतया असावधान थे तो यह लड़की (अलाउद्दीन की धर्मपत्नी) उनके पास पहुंच गई, मानो वह यह छन्द पढ़ रही हो।

'निस्संदेह वह भोग-विलास सबसे उत्कृष्ट है, जो समय अवसर) तुझे प्रदान करे और जिस समय आपत्तियां सो रही हों।'

अलाउद्दीन को यह बहुत बुरा मालूम हुआ। उसकी धर्मपत्नी ने केवल आलोचना ही नहीं की अपितु अपने पैर से जूता निकाल लिया और उस स्त्री को उससे मारा भी। अलाउद्दीन ने जब यह देखा तो वह सहन न कर सका।

उसके हाथ में तलवार थी। उसने वह तलवार अपनी धर्मपत्नी को मारी, किन्तु घाव गहरा न लगा। तलवार के घाव से केवल कुछ रक्त बह गया। अलाउद्दीन अब बड़े संकट में पड़ गया। वह बहुत घबराया, कारण कि उसकी पत्नी बड़ी चतुर थी और उसकी (पत्नी की) माता बड़ी दुष्टा थी, किन्तु उसका चचा (जलालुद्दीन) बड़ा ही सहनशील और उस पर बड़ी कृपादृष्टि रखता था। किन्तु अलाउद्दीन और उसकी धर्मपत्नी में यह घबड़ाहट बहुत समय तक वर्तमान रही।''—खलजी कालीन भारत; पृष्ठ २३०

अलाउद्दीन की ऐसी स्त्री-लोलुपता वाली बात का न कहीं अमीर खुसरो ने जिक्र किया है न जियाउद्दीन बर्नी और इसामी ने किया है, जो उस सुलतान के बहुत से तथ्यों को ठीक जानने और वर्णन करने वाले बताये जाते हैं। अतिकामान्ध और क्रूर प्रकृति वाला अलाउद्दीन चित्तौड़ की राजरानी पद्मिनी जैसी अनुपम हिन्दु स्त्री का रूप-सौन्दर्य सुन कर, उसे हस्तगत करने की कामना को कैसे टाल सकता था? इस कार्य से तो उसके दुष्ट उद्देश्य एक साथ सिद्ध होने जैसे थे। वह इस दुर्वासना से प्रेरित हो कर, एक तो चित्तौड़ के राजा जैसे, हिन्दु जाति के सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय वंश को पददलित कर देना चाहता था और दूसरा उसी श्रेष्ठ राजवंशीय राजघराने की मुख्य राजरानी जैसी अनुपम हिन्दु स्त्री का सतीत्व नष्ट कर, समस्त हिन्दु जाति के स्वधर्माभिमान का अपनी क्रूर तलवार द्वारा शिरश्च्छेद कर देना चाहता था; और इस तरह वह, अमीर खुसरो के कथनानुसार, भारत के स्वर्गसमान उस पवित्र दुर्ग को उद्ध्वस्त कर, वहां पर, इस्लाम की विजय का पत्थर गाड़ना चाहता था। इसी मुराद से वह दिल्ली से बड़े जोर के नगाड़े बजाता हुआ चित्तौड़ पर चढ़ा था। इसीलिये उसका वह चापलूस भाट भी, अपनी मदभरी कविता के कटोरे पिलाता रह कर उसका जी बहलाने के लिये साथ में चला था। बड़ी उमंग से, चुटकी ही में चित्तौड़ की रानी और राज्यसत्ता दोनों प्राप्त करने की लालसा से वह चित्तौड़ पहुँच गया। पर, वहां के शूर-वीर क्षत्रिय सन्तानों ने उसका वैसा सामना किया जिसकी उसको कल्पना भी न हुई थी। यह तो निश्चित ही था कि उस दानव की वैसी महान् सैनिक शक्ति के सामने चित्तौड़ के अल्पसंख्यक राजपूत कितने दिन टिक सकते थे? इसलिये आखिर में उन्होंने अपनी राज्यसत्ता का संपूर्ण बलिदान कर देने की दृष्टि से, वह जौहररूप महायज्ञ संपन्न किया, जिसमें राजरानी सहित राजघराने की समस्त नारियों ने अपनी आहुति दे दी तथा अवशिष्ट राजपूत वीर किले को छोड़ कर रणभूमि में पहुंचे और अपनी रक्तधाराओं से अपने पूर्वजों की पुण्य भूमि का तर्पण कर स्वर्ग लोक

में चले गये। यद्यपि इस प्रकार उस सुलतान ने अपने हजारों सैनिकों को मौत के घाट पहुँचा कर और उनके मुर्दों को जमीन में दफना कर अपनी राज्यलोलुपता की तृप्ति कुछ अंशों में कर ली, पर वह अनुपम राजरानी, जिसको बादशाह के यार कवि ने 'शेवा' की रानी 'वलकीस' की उपमा देकर उस दुष्ट प्रकृति सुलतान को चगाया था, वह प्राप्त न हो सकी। वह तो, उस दुष्ट दानव के पापी पैरों के कलुषित स्पर्श द्वारा अपने तीर्थभूत दुर्ग की पुण्य भूमि अपवित्र बने उसके पहले ही माता ज्वालामालिनी की गोद में बैठ कर, अपनी देवांशी देह को भस्म-स्वरूप बना कर, भगवान् शिव के भूतिमय ललाट पर जा बिराजी थी। इस प्रकार उस दानव की वह दुराशा मिट्टी में मिल गई और वह वहाँ से निराश होकर शीघ्र वापस अपने स्थान को चल पड़ा।

ऐसी निराशाजनक घटना का उल्लेख या आभास अमीर खुसरो के उस चापलूसी-भरे काव्य में कैसे आ सकता है? उसके उस काव्य में ऐसी घटना के उल्लेख के आने की सम्भावना भी कैसे की जा सकती है?

तथापि अमीर खुसरो ने चित्तौड़-युद्ध वाले वर्णन में, जो कुछ बात अपने विषय में कही है वह अलाउद्दीन की उस समय की मानसिक निराशा का स्पष्ट आभास प्रकट करती हैं। हिन्दुओं का स्वर्ग जैसा भव्य और श्रेष्ठ किला फतह कर लेने पर तथा 'समस्त हिन्दु राजाओं में सर्वश्रेष्ठ राजा' पर अद्भुत विजय प्राप्त कर लेने पर, उस घमण्डी सुलतान को ऐसी क्यों निराशा हो गई कि जिससे वह अपने भाट-जैसे दरबारी कवि के लिये 'हुदहुद' का नाम लेकर चिल्लाने लगा तथा वड़े-बड़े लड़ाकू योद्धा वीरों को शाबासी देने के बदले भाट जैसे वाचाल और चापलूस बन्दे को ही पुकारने लगा। उस समय सुलतान को यह भी भान नहीं था कि वह 'हुदहुद' नाम की चिड़िया उस किले पर विद्यमान् भी है या नहीं, जो उसको शेबा की रानी के समान किसी चीज के लिये लालायित बनाये रखती थी। अमीर खुसरो को यह बड़ा भय उस समय क्यों पैदा हो गया था कि यदि वह उस समय अपने सुलेमान के सामने उपस्थित होता तो न जाने वह सुलेमान, क्रोध और निराशा के मारे उस बेचारी गरीब चिड़िया का क्या हाल करता।

अमीर खुसरो का यह स्वविषयक उल्लेख सबसे अधिक महत्त्व का है। इसमें चित्तौड़ के युद्ध का पूरा रहस्य छिपा हुआ है और वह रहस्य स्पष्ट रूप से पद्मिनी विषयक वृत्तान्त का सूचन करता है। अमीर खुसरो गर्भितरूप से कह रहा है कि बादशाह ने पद्मिनी के बारे में जो बातें मुझ से या मेरे जैसे

अन्य किसी से सुन रखी थीं और जिसकी प्राप्ति के लिये उसने चित्तौड़ पर धावा किया था तथा उसको जीतने के लिये हजारों चुनिन्दा मुसलमान सैनिकों को मौत के घाट पहुंचाया था वह 'शेबा' की रानी के समान पद्मिनी अलाउद्दीन के किला फतह कर उसमें प्रविष्ट होने के पूर्व ही, समस्त राजरानियों के साथ भस्म हो चुकी थी। चित्तौड़ के रक्षक राजपूत, जो लड़ते-लड़ते आखिर में थोड़े बहुत बचे थे, वे अपने अन्तिम नेता के साथ केसरिया करके किले के मुख्य द्वार से निकल कर दुश्मन के सामने जा डटे और मार-काट करते हुए शाही खेमे पर टूट पड़े। इसी घटना का संकेत अमीर खुसरो अपने वर्णन में स्पष्ट रूप से दे रहा है। 'राजा पत्थर के द्वार से इस तरह उछल कर निकला जैसे पत्थर से आग निकलती है', इस वाक्य का क्या अर्थ हो सकता है? यही कि वे शूरवीर राजपूत अपने किले के दरवाजे से बड़े आवेग पूर्वक बाहर निकल आये और आग के उड़ते और उछलते हुए अंगारों की तरह अपनी तलवारें चमकाते हुए उन दुश्मनों पर टूट पड़े। राजपूतों को जब अपनी जीत की आशा नहीं रहती तो वे सदैव जौहर करके अन्त में अपने दुर्ग या गढ़ को छोड़ कर दुश्मन का आखिरी मुकाबला करने को निकल पड़ते हैं। 'हमीर-महाकाव्य' में इस आखिरी मुकाबले का बहुत रोमहर्षक वर्णन दिया है। जालोर के चाहमान वीर कान्हड़देव के चरित्र वर्णन रूप 'कान्हड़देव प्रबन्ध' में भी ऐसा ही अद्‌भुत शौर्य-प्रदर्शक वर्णन मिलता है। इसलिये अमीर खुसरो का उक्त वर्णन, उस युद्ध की अन्तिम घटना का आभास दे रहा है। राजा बादशाह की शरण में आ गया इसलिये वह नहीं मारा गया और बाकी के सब राजपूत वीरों को कत्ल कर दिया गया इस बात का मर्म तो कुछ और ही है, जिसका जिक्र हम आगे करना चाहते हैं। प्रस्तुत में तो अमीर खुसरो के स्वगत उल्लेख का रहस्योद्‌घाटन करना ही अपेक्षित है।

पद्मिनी-विषयक कुछ बातें अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन से कह रखी थीं इसलिये वह खुसरो अपनी तुलना सुलेमान के उस 'हुदहुद' पक्षी के साथ कर रहा है जो शेबा की रानी बलकीस के विषय में सुलेमान को खबरें दिया करता था। इसीलिये अलाउद्दीन को जब बलकीस के जैसी रानी पद्मिनी, उस चित्तौड़ दुर्ग में न मिली तब वह अत्यन्त निराश और क्रुद्ध हुआ और उस क्रोध और निराशा से भरे शब्दों में उस 'हुदहुद' पक्षी को चिल्ला कर पुकारने लगा। पर मौत के भय से वह 'हुदहुद' (खुसरो) उस समय वहां से कहीं सटक गया था। क्योंकि वह समझता था कि अलाउद्दीन पद्मिनी के बारे में उससे पूरी कैफियत मांगता और वह क्यों नहीं हाथ आई इसके बारे में भी सारी जानकारी

चाहता। पर इसका कोई जवाब खुसरो के पास नहीं था; सिवा इसके कि वह तो जल मरी है, वह और क्या बताता और इसको सुनकर न जाने बादशाह उस समय उस पर कैसी बिताता ? इसलिए उसने वहां से रफू हो जाना ही अपनी जान बचाने का उपाय समझा।

अमीर खुसरो के उक्त कथन का इसके सिवा और कोई अर्थ घट नहीं सकता, और न ही सुलेमान और शेबा की रानी बलकीस के साथ 'हुदहुद' पक्षी की उपमा का जिक्र इस संदर्भ में अन्य रूप से सार्थक हो सकता है।

प्रो० हबीब ने, जो इस्लामी साहित्य और इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् हैं और जिन्होंने अमीर खुसरो के 'खज़ाइन-उल्-फुतूह' का उपर्युक्त उल्लेखानुसार प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद किया है, इस उल्लेख पर जो टिप्पणी दी है (ऊपर पृ० ५५) उसमें इस बात का स्पष्ट निर्णय दिया है। डॉ० कानूनगो प्रो० हबीब के इस निर्णय से सहमत नहीं हैं। वे इस उल्लेख में पद्मिनी का कोई संकेत रहा हुआ है, ऐसा नहीं समझते। उन्होंने इस उल्लेख के बारे में अपनी उक्त 'स्टडीज इन् राजपूत हिस्ट्री' नामक पुस्तिका में कुछ स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न किया है पर हमारे विचार से उसमें कोई तथ्य नहीं है। वह उनका तर्क वैसा ही असंगत है जैसे उनके अन्यान्य कई तर्क हैं। इनमें से कुछ का उल्लेख और स्पष्टीकरण हम क्रम से आगे करना चाहते हैं। उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि अमीर खुसरो ने पद्मिनी के नाम का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया और न ही उसके विषय की किसी विशेष बात का जिक्र किया है, पर उसने चित्तौड़-युद्ध के वर्णन में जो अपने विषय का गर्भित उल्लेख किया है उससे स्पष्ट इस घटना का संकेत मिल रहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है; अन्यथा इस उल्लेख की वहां पर कोई संगति नहीं मालूम देती।

रत्नसिंह विषयक उल्लेखों का अवलोकन और स्पष्टीकरण

डॉ० कानूनगो ने उक्त प्रकार से पद्मिनी की सत्ता को असिद्ध करने के लिए जो कुछ असंगत तर्क उपस्थित किये हैं उनमें एक मुख्य तर्क यह भी है कि जिस तरह चित्तौड़ के पुराने ऐतिहासिक वर्णनों में पद्मिनी का उल्लेख नहीं मिलता उसी तरह उसके पति राजा रत्नसेन का भी ठीक उल्लेख नहीं मिलता, अतः राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती दोनों ही कल्पित पात्र हैं।

पद्मिनी के विषय में तो हमने ऊपर जो कुछ लिखा है वह पर्याप्त प्रमाण-भूत माना जाना चाहिये। रत्नसिंह की सत्ता के विषय में हम यहां पर उन

पुराने अस्त-व्यस्त उल्लेखों की परस्पर संगति पर अपने विचार प्रस्तुत करना चाहते हैं और साथ में कुछ ऐसे भी प्रमाण उपस्थित करना चाहते हैं जो हमें उदयपुर के ऐतिहासिक साधनों द्वारा प्राप्त हो रहे हैं।

स्वर्गीय म. म. गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा नें, अपने सर्वाधिक प्रमाणभूत और प्रतिष्ठित ग्रन्थ 'राजपूताने के इतिहास' में, अलाउद्दीन के आक्रमण के समय चित्तौड़ का स्वामी रावल रत्नसिंह था, यह तो उसी के राज्य काल के वि. सं. १३५६ में उत्कीर्ण शिलालेख के प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध कर दिया है। ओझाजी ने इस लेख के विषय में लिखा है कि 'महारावल रत्नसिंह के समय का अब तक एक ही शिलालेख मिला है, जो वि. सं. १३५६ माघ सुदि ५ बुधवार का है। यह लेख दरीबे की खान के पास वाले माता (मातृकाओं) के मन्दिर के एक स्तम्भ पर खुदा है।' (ओझाजी का 'राजपूताने का इतिहास', भाग १, पृ० ४६५)

ओझाजी ने अपने उक्त उल्लेख के नीचे पाद टिप्पणी में उल्लिखित शिलालेख का पाठ भी दिया है जो निम्न प्रकार है—

"सं० १३५६ वर्षे माघ सुदि ५ बुध दिने अद्येह श्री मेदपाट मंडले समस्त राजावलि समलंकृत महाराजकुल श्री रतनसिंह देव कल्याण विजय राज्ये तन्नियुक्त महं० श्री महणसीह समस्त मुद्राव्यापारान् परिपंथयति......................

(दरीबे का लेख-अप्रकाशित)

"इस लेख की छाप मुझे ता० १६-८-२६ को राणावत महेन्द्रसिंह द्वारा उदयपुर में प्राप्त हुई।" (वही पुस्तक, पृ० ४६५-६६)

जैसा कि लेख की पंक्तियों से स्पष्ट होता है; यह लेख अपूर्ण है। किस निमित्त यह लेख खोदा गया था, इसका वर्णन लेख के त्रुटित अंश में चला गया है। इस लेख के उत्कीर्ण करने का समय वि० सं० १३५६ की माघ सुदि ५ बुधवार है। उस समय मेदपाट मंडल अर्थात् मेवाड़ प्रदेश में समस्त राजगुणों से समलंकृत महाराजकुल अर्थात् महारावल श्री रतनसिंह देव का कल्याणकारी राज्य प्रवर्त्तमान था और उनका समस्त राज्य-कार्य-भार वहन करने वाला अर्थात् मुख्य प्रधान महं (महत्तम–महेता) महणसीह था।

इस लेख को पढ़कर इतिहास के अल्प से अल्प अभ्यासी जन को भी इसमें सन्देह नहीं रह सकता कि सं. १३५६ के माघ महीने की सुदि ५ बुधवार के दिन

मेवाड़ में महारावल रतनसिंह राज्य कर रहा था। अलाउद्दीन के इतिहास-लेखक अमीर खुसरो की दी हुई मिति यदि ठीक हो तो उससे जाना जाता है कि इसी माघ महीने की सुदि ६ को, अर्थात् जिस दिन दरीबे का उक्त लेख लिखा गया उसके ठीक ४ दिन बाद ही, अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई करने के लिए दिल्ली से प्रयाण किया था। चित्तौड़ पहुंचने में उसको कितना समय लगा यह उस इतिहास में नहीं बताया गया है। अमीर खुसरो ने केवल इतना ही लिखा है कि—चित्तौड़ पहुंचकर सुलतान ने उस प्रदेश में बहने वाली दो नदियों के बीच वाले भाग में अपनी सेना के खेमे गाडने का आदेश दिया। फिर, किले को सर करने की कारवाई शुरू हुई, परन्तु दो महीनों तक यह कार्यवाही चलती रहने पर भी शाही सेना किले की कमर तक भी नहीं पहुँच पाई। तब बादशाह ने मोर्चा बदला और चित्तौड़ी नामक (छोटी) पहाड़ी के ऊपर जा कर अपना खेमा गडवाया और वहां से मगरबियों और पाशिबों के साधनों द्वारा किले की दीवारें तुड़वाकर किले को फतह किया, इत्यादि। इस प्रकार ७ महीनों अर्थात् भाद्रपद सुदी १ प्रतिपदा के दिन सुलतान ने किले में प्रवेश किया। ईस्वो सन् के मुताबिक ये दिन इस प्रकार होते हैं–२८ जनवरी, १३०३ ई० को अलाउद्दीन ने दिल्ली से चित्तौड़ की ओर प्रयाण किया; २६ अगस्त १३०३ ई० को चित्तौड़ का किला फतह किया।

अलाउद्दीन के इतिहास-लेखक खुसरो और बर्नी आदि ने वहां के राजा का नाम नहीं लिखा, पर उपर्युक्त शिलालेख के प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है कि वह महारावल रत्नसिंह ही था और वही पद्मिनो की कथाओं में वर्णित उसका पति राजा रतनसेन है।

पर, यह रत्नसिंह अथवा रतनसेन कौन था, किसका पुत्र था और कब चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा, यह एक प्रश्न इतिहासकारों के लिये समस्या-रूप बना हुआ है और इसी समस्या के कारण रत्नसिंह और रानी पद्मिनी की सत्ता का प्रश्न विशेष उलझन में पड़ गया है।

जैसा कि हमने ऊपर सूचित किया है, अलाउद्दीन के भयंकर आक्रमण के कारण, कुछ समय के लिए चित्तौड़ की राज्यसत्ता विलुप्त-सी हो गई थी। उस युद्ध में चित्तौड़ राज्य के प्रायः समस्त राजपूत योद्धा और सामंतगण मारे गये थे। राजवंश एक प्रकार से विच्छिन्न हो गया था। राज्य का समस्त वैभव लुट गया था। चित्तौड़ राज्य की समस्त संपत्ति किले पर ही संचित थी। युद्ध के प्रसंग में जब किला मेवाड़ के रक्षकों के हाथों से सर्वथा छिन जाने की

स्थिति में आ गया तब प्रथम तो राज्य के कर्ता-धर्ताओं ने स्वयं अपनी धन-जनादि उस समस्त संपत्ति को अपने ही हाथों नष्ट कर दिया था; और जो कुछ बच गई थी उसे मुसलमानों ने नष्ट कर दिया। प्राय: १०-१५ वर्ष तक मुसलमानों का उस किले पर अधिकार रहा। मेवाड़ के थोड़े-बहुत राजपूत जो इधर-उधर बच गये थे वे चित्तौड़ से दूर-दूर के पहाड़ों में चले गये थे। मुसलमान अत्याचारियों ने किले पर और नीचे की तलहटी में बने हुए राजभवनों और देवमन्दिरों को बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। ऐसी स्थिति में चित्तौड़ के राजवंश से संबन्धित एवं अन्यान्य स्थानीय ऐतिहासिक साधनों का बहुत अंश में विलोप हो जाना अनिवार्य था।

चित्तौड़ के इस प्रकार के सर्वनाश के कोई २०-२५ वर्ष बाद राणा हमीर ने अपने प्रबल बाहु-पराक्रम द्वारा चित्तौड़ को पुन: हस्तगत किया और वहाँ पर अपने पैतृक राजसिंहासन की पुन: प्रतिष्ठा की। हमीर को चित्तौड़ का विनष्ट राज-पाट सर्वथा खाली मिला था। उस समय वहां पर चित्तौड़ की भूतकालीन समृद्धि का कोई भी अवशेष बाकी नहीं था। भस्मीभूत बने हुए खण्डहरों पर उसने अपने नये राजभवनों और अन्यान्य स्थानों का पुनरुद्धार कार्य शुरू किया था। वर्षों के संकटों से त्रस्त लोगों को अपने पूर्वजों की स्मृति तक क्षीण हो गई थी। उस युद्ध में कौन वीर, कौन सामंत, कब मारा गया, कब पकड़ा गया और कब कहाँ चला गया—इसका भी अनेकों को कुछ पता नहीं रहा। महाराणा हमीर के निज के परिवार के पिता, चाचा, बाबा, दादा आदि अनेक समर्थ, शूरवीर और पराक्रमी नर भी उस युद्ध में मर चुके थे और जो कोई बच रहे थे वे इधर-उधर जा बसे थे। हमीर के चित्तौड़ में आकर बैठने के बाद धीरे-धीरे सब फिर व्यवस्थित होने लगा।

मालूम देता है, महारावल रत्नसिंह की कोई औरस संतान विद्यमान नहीं थी। हमीर रत्नसिंह के एक भतीजे अरसी का पुत्र था। वही उस वंश में उस समय एकमात्र होनहार बालक के रूप में विद्यमान था। रत्नसिंह की मृत्यु के बाद, उस वंश के अवशिष्ट राजपूतों ने उसे चित्तौड़ की राजगद्दी का स्वामी नियुक्त कर उसको राजतिलक कर दिया और उसकी रक्षा के निमित्त उसे सीसोदे आदि के प्रदेश में भेज दिया। वहां वह अपना बालपन बिताता रहा और साथ ही अपनी शक्ति बढ़ाता रहा। अवसर पाकर वह चित्तौड़ का किला हस्तगत करने में सफल हुआ और उक्त प्रकार से उसने विध्वस्त चित्तौड़-राज्य का पुनर्निर्माण-कार्य शुरू किया।

(१) रावल रत्नसिंह महारावल समरसिंह की मृत्यु के बाद मेवाड़-राज्य

का स्वामी बना था, पर वह समरसिंह का औरस पुत्र नहीं था। वह सीसोदे की लघु शाखा वाले गढ-मंडलीक विरुदधारक भड लक्ष्मसिंह का छोटा भाई था।

(२) भड लक्ष्मसिंह के पिता का नाम जयसिंह (जेसिंग) था, जो भीमसिंह (भीमसी-भीमसेन) का पुत्र था।

(३) भड लक्ष्मसिंह आदि कुल मिलाकर १३-१४ भाई थे, जो प्रायः सबके सब उस चित्तौड़ की लड़ाई में काम आये।

(४) भड लक्ष्मसिंह के अरसी, अजैसी, अनंतसी आदि कई पुत्र थे जिनमें से ७ पुत्र भी उस लड़ाई में उसके साथ मारे गये थे।

भाटों और बड़वों आदि की बहियों में इन नामों को भ्रम से कुछ आगे-पीछे लिख देने के कारण लक्ष्मसिंह की वंशावली में कुछ गड़बड़ हो गई और उसके कारण रत्नसिंह के वास्तविक क्रम का निर्देश भी भ्रमात्मक बन गया।

रत्नसिंह प्रथम तो उस युद्ध में, प्रारंभ ही में बादशाह द्वारा किये गये छल के कारण से गफलत में पकड़ा गया, पर गोरा बादल जैसे वीरों की चतुराई और रणकौशल के कारण वह छुड़ा लिया गया था। उस समय शायद भड लक्ष्मसिंह वहां मौजूद नहीं था। वह शायद मालवे में मुसलमानों की सेना के साथ उलझा हुआ था। चित्तौड़ पर अलाउद्दीन ने स्वयं आक्रमण किया है और उसके छलभेद द्वारा उसका छोटा भाई राजा रत्नसिंह पकड़ा गया है तथा दुष्ट अलाउद्दीन रानी पद्मिनी को लेना चाहता है, यह सुनकर वह चित्तौड़ की रक्षा के लिए वहां पहुँच गया। चित्तौड़ के राजपूतों ने बड़ी चतुराई के साथ अलाउद्दीन को धोखे में डाल कर तथा उसे पूरा बेवकूफ बनाकर, उसके पंजे में से राजा रत्नसेन को छुड़ा लिया, इससे उस सुलतान के क्रोध की ज्वाला भयंकर रूप से भभक उठी। फिर, उसने अपनी सर्व शक्ति लगाकर चित्तौड़ का नाश करना निश्चित कर लिया और दिल्ली से बहुत बड़ी सेना लेकर वह वहां पर डट गया। इस पुनराक्रमण के समय लक्ष्मसिंह के नेतृत्व में वह भयंकर युद्ध शुरू हुआ। उस समय रत्नसिंह या तो अस्वस्थ रहा हो या राज्यभार वहन करने में अशक्त बन गया हो, इससे लक्ष्मसिंह ने अपने अन्य एक भाई को राज-तिलक कर उसके झंडे के नीचे अपने राजपूतों को लड़ाई के मैदान में भेजना चालू रखा। युद्ध के मैदान में जब वह नया राजा मारा गया तो उसके स्थान पर लक्ष्मसिंह ने फिर अपने अन्य एक और भाई को राजचिह्न धारण करा कर उसें युद्ध-क्षेत्र में भेज दिया। इस तरह उसने एक के बाद एक अपने भाइयों को राज्य-सिंहासन पर बिठा-बिठा कर युद्ध का मोर्चा चालू रखा। वह स्वयं इधर-

उधर घूम फिर कर युद्धोपयोगी सामग्री जुटाता रहा तथा अपने सम्बन्धी और मित्ररूप अनेक राजपूतों को प्रोत्साहित करता रहा। लक्ष्मसिंह बहुत रणकुशल तथा अत्यन्त वीर-प्रकृति का महायोद्धा था। उस समय चित्तौड़-राज्य और उसके समीप के सभी राजपूतों पर उसका बहुत अधिक प्रभाव था। उसके सभी भाई बड़े शूरवीर और अपने ज्येष्ठ बन्धु की आज्ञा को शिरोधार्य करने वाले श्रद्धान्वित थे। उसके अनेक पुत्र थे और वे सभी बड़े शूरवीर और अपने पिता के पूर्ण भक्त थे। इन पुत्रों में से ७ पुत्र भी उस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गये थे। इस प्रकार युद्ध करते-करते जब चित्तौड़ के सभी मुख्य योद्धा और सामंत राजपूत खत्म हो गये तब लक्ष्मसिंह ने अब और अधिक समय तक युद्ध को चालू रखने की स्थिति न देखी। उधर, अलाउद्दीन ने एक तरफ से किले की दीवारें तुड़वा कर अपने सैन्य को किले के अन्दर पहुँचा देने की स्थिति प्राप्त कर ली थी। इस कारण लक्ष्मसिंह ने, जैसा कि सभी दुर्गपति किया करते हैं, युद्ध की अन्तिम योजना का विचार किया और तदनुसार अपनी सर्व राज्य संपत्ति और पद्मिनी आदि राजपरिवार के प्रधान स्त्रीवर्ग को भस्मसात् कर देने की व्यवस्था की। अन्तिम दिन, वह अवशिष्ट योद्धाओं को साथ लेकर किले से उतरा और अलाउद्दीन के सैन्य पर टूट पड़ा। अलाउद्दीन की सैन्य-संख्या बहुत बड़ी थी इसलिए वे इने-गिने राजपूत कितने समय तक टिक सकते थे? पर, वे क्षत्रिय वीर तो अपने कुल, देश और धर्म की रक्षा के निमित्त रणभूमि में प्राणोत्सर्ग करने के क्षण को मंगलमय उत्सव समझते थे, इसलिए शत्रु कैसा है और उसकी कितनी शक्ति है इसका वे कभी विचार नहीं करते थे। भड लक्ष्मसिंह, उसी क्षात्रधर्म का पालन करता हुआ, अपने अनेक पूर्वजों से पूजित राष्ट्र-तीर्थस्वरूप चित्तौड़ की उस पुण्यभूमि का अपने देवांशी रक्त से तर्पण कर स्वर्गलोक में चला गया।

चित्तौड़ एवं मेदपाट-राज्य का मुख्य स्वामी तथा जिसके निमित्त यह महायुद्ध हुआ उस रानी पद्मिनी का पति रावल रत्नसिंह भी उसी के साथ युद्ध में मारा गया। इस प्रकार उस युद्ध में, चित्तौड़ राज्य के गुहिलोतवंशीय रावल बापा की सन्तान के राज्यसिंहासन पर बिराजमान होकर, कुछ-कुछ दिनों तक राज-छत्र धारण करने वाले, तेरह राणा मृत्यु को प्राप्त हो गये और चित्तौड़ का राजमन्दिर स्वामिहीन हो गया। भारत के राजपूती युद्ध के इतिहास का यह एक अद्भुत उदाहरण है, जिसकी तुलना कवियों ने पुराण-काल में होने वाले रामायण और महाभारत के युद्धों के साथ की है।

रामायण भारथ विध राणां, सूरां सुमिरण मरण तिसो।
साको कीयो गढ लखमणसी, अवर न साको हुओ इसो ।।*

तेरा से संमत वरस इकतीसे (सट्ठे?), जवन हिंदवां हुओ जुद।
राणे बात अवाढी राखी, तेरा पीढी झूझबी तद।।
....

उक्त वर्णन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अलाउद्दीन द्वारा किये गये चित्तौड़ पर के उस आक्रमण में, चित्तौड़ का मुख्य रक्षक और युद्ध का प्रमुख नेता भड लक्ष्मसिंह था। यद्यपि प्रारम्भ में उस समय राज्य का स्वामी रत्नसिंह था और वही स्वर्गस्थ रावल समरसिंह के उत्तराधिकारी के रूप में राज्यशासन करता था परन्तु, उसके राज्य का, और वंश का भी, सर्वाधिक समर्थ पुरुष उस समय लक्ष्मसिंह ही था। उसी ने शायद अपने छोटे भाई रत्नसिंह को समरसिंह के निःसन्तान होने के कारण, राजगद्दी पर बिठाया था। पद्मिनी के साथ लग्न करने में भी रत्नसिंह को अपने बड़े भाई लक्ष्मसिंह की ही मुख्य सहायता मिली थी। लक्ष्मसिंह के वचन के आधार पर ही पद्मिनी के पिता ने रत्नसिंह को अपनी प्रिय पुत्री ब्याही थी। उसी ने फिर, चित्तौड़ के संकट के समय पद्मिनी की रक्षा के निमित्त अपना सर्वस्व और अपना सारा वंश-परिवार युद्ध में होम दिया था। लक्ष्मसिंह की इस प्रकार की प्रमुखता के कारण, रत्नसिंह का नाम गौण बन गया था। अतएव पिछले ख्यातादि लेखकों ने तो रत्नसिंह का नाम तक भी नहीं दिया और समरसिंह के बाद लक्ष्मसिंह का राजा होना लिख दिया है।

लक्ष्मसिंह का सबसे बड़ा पुत्र अरसी था और छोटा अजयसिंह या अजैसी था। अजैसी उस युद्ध में शायद पहले ही घायल हो गया था, सो उसको चित्तौड़ से बाहर सीसोदे भेज दिया गया था। वहां वह बहुत समय तक जीवित रहा। वह सीसोदे वाली शाखा के अवशिष्ट पुरुष के रूप में अपनी जागीर की व्यवस्था करता रहा।

लक्ष्मसिंह का बड़ा पुत्र अरसी अपने पिता के साथ लड़ाई में मारा गया था। उसका पुत्र वीर हमीर हुआ।

लक्ष्मसिंह के मरने पर, उसके अवशिष्ट पुत्र अजैसी द्वारा मेवाड़ का राजतिलक हमीर को किया गया क्योंकि वही उस समय मेवाड़-राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी के रूप में बचा था। हमीर की अवस्था उस समय कोई १०-१२

---

*यह पूरा कवित्त आगे दिया गया है।

वर्ष जितनी होगी। वह अपने चाचा अजैसी की रक्षा में पला था। उसीने उसको मेवाड़ राज्य के भावी स्वामी के रूप में घोषित कर दिया था। वयस्क होने पर हमीर ने अपना वह उत्तराधिकार संभाला और पूर्वोक्त रूप से उसने मेवाड़-राज्य की चित्तौड़ में पुनः सुप्रतिष्ठा की।

इस वर्णन से रत्नसिंह का मेवाड़ राज्य की नामावली में वास्तविक स्थान क्या है और उसके विषय की समस्या का क्या स्वरूप है, यह स्पष्ट हो जाता है। रत्नसिंह की समस्या का यह निष्कर्ष हमने मेवाड़ के ऐतिहासिक साधनों के आधार पर ही निकाला है। ये साधन यद्यपि अस्त-व्यस्त स्वरूप के हैं, परन्तु उन सबका तारण करने पर यही वास्तविक तथ्य प्रकट होता है।

अब हम यहां पर इन साधनभूत उल्लेखों का क्रमशः परिचय देते हैं—

१. रत्नसिंह अलाउद्दीन की चढ़ाई के समय चित्तौड़ का स्वामी था, यह उपर्युक्त दरीबे वाले लेख से सर्वथा निश्चित है।

२. रत्नसिंह को समरसिंह रावल ने चित्तौड़ का अपना राजसिंहासन सौंपा यह उल्लेख महाराणा कुम्भा द्वारा तैयार कराई गई कुम्भलमेर की प्रशस्ति में स्पष्ट रूप से किया गया है। महाराणा कुम्भा ने ही बड़ी खोज के साथ अपने पूर्वजों की वंशावली निश्चित करवाई थी इसलिए उसके कथन में किसी शंका का स्थान नहीं हो सकता। कुम्भावाली कुम्भलमेर की प्रशस्ति में चित्तौड़ के मूल स्वामी रावल समरसिंह के उल्लेख के बाद निम्न प्रकार का श्लोक दिया हुआ है—

स (समरसिंहः) रत्नसिंहं तनयं नियुज्य स्वचित्रकूटाचलरक्षणाय।
महेशपूजाहतकल्मषौगः इलापतिः स्वर्गपतिर्बभूव॥

(कुम्भलमेर की प्रशस्ति का १७६ वाँ पद्य)

यही पद्य, एकलिंग माहात्म्य के राजवर्णन में भी उद्धृत किया हुआ है जिसका संकलन महाराणा कुम्भा के राजपण्डित कान्ह भट्ट ने किया था। उदयपुर के सरस्वती भंडार में यह ग्रन्थ सुरक्षित है।

स्वर्गीय ओझाजी ने इस पद्य का यह अर्थ लगाया कि महारावल समरसिंह, अपने पुत्र रत्नसिंह को चित्रकूट का राज्य देकर, स्वयं स्वर्ग चले गये। वे लिखते हैं—'मेवाड़ का स्वामी रत्नसिंह समरसिंह का पुत्र था जैसा कि राणा कुम्भकर्ण के समय के सं० १५१७ के कुम्भलगढ के शिलालेख और एकलिंगमाहात्म्य से पाया जाता है। इन दोनों में यह भी लिखा है कि समरसिंह के बाद उसका पुत्र रत्नसिंह राजा हुआ। (राजपूताने का इतिहास, भा. २, पृ. ४८५)।

ओझाजी ने 'तनय' का अर्थ औरस पुत्र समझा मालूम देता है और इसलिये उन्होंने रत्नसिंह को समरसिंह का पुत्र कहा है। परन्तु, जैसा कि आगे दिये जाने वाले इसी प्रकार के अन्यान्य अनेक प्रमाणों से ज्ञात होता है, रत्नसिंह समरसिंह का औरस पुत्र नहीं था। वह तो सीसोदे वाले भीमसी का पौत्र और जयसिंह (जेसिंग) का पुत्र था और लक्ष्मसिंह का छोटा भाई था। समरसिंह के कोई पुत्र न होने से रत्नसिंह को गोद बिठा कर उसको राज्य का स्वामी बनाया गया होगा। राजपूतों में राजा के सन्ततिहीन होने पर उसके वंश के किसी निकटस्थ और योग्य जन को गादी (गद्दी) पर बिठा कर राज्य का स्वामी बनाया जाता है, जो प्रायः सर्वविश्रुत बात है।

अतः कुम्भलगढ वाले उक्त प्रशस्ति-पद्य का वास्तविक अर्थ यह है कि समरसिंह ने रत्नसिंह को अपना तनय अर्थात् पुत्र बनाकर उसे चित्रकूट की रक्षा का भार सौंपा और स्वयं महेश्वर की आराधना करता हुआ स्वर्ग सिधारा। इस प्रकार किसी राजा का जो उत्तराधिकारी होता है वह उसका पुत्र ही कहलाता है। जो व्यक्ति दत्तक के रूप में किसी अन्य कुटुम्ब में जाता है वह, हिन्दु धर्मशास्त्र के अनुसार, उस कुटुम्ब का पुत्र या सन्तान ही कहलाता है। इसलिये रत्नसिंह को समरसिंह का तनय या पुत्र लिखना सर्वथा परम्परानुसार और सुसंगत है।

रत्नसिंह किसका पुत्र था, इसके बारे में स्वर्गीय म. म. ओझाजी को भी कुछ भ्रम ही रहा और इस विषय का ऊहापोह करते हुए उन्होंने मुंहता नैणसी की ख्यात का भी उल्लेख कर उस पर अपना भ्रमात्मक निर्णय दे दिया। ओझाजी लिखते हैं कि—'मुंहणोत नैणसी अपनी ख्यात में लिखता है कि रतनसी(रत्नसिंह) पद्मणी (पद्मिनी) के मामले में अलाउद्दीन से लड़कर काम आया। परन्तु; वह रतनसिंह को एक जगह तो समरसी (समरसिंह) का पुत्र और दूसरी जगह अजैसी (अजयसिंह) का पुत्र और भड लखमसी (लक्ष्मसिंह) का भाई बतलाता है, जिनमें से पिछला कथन विश्वासयोग्य नहीं है क्योंकि लखमसी अजैसी का पुत्र नहीं किंतु पिता और सीसोदे का सरदार था। इस प्रकार रत्नसिंह लखमसी का भाई नहीं, किंतु मेवाड़ का स्वामी और समरसिंह का पुत्र था, जैसा कि राणा कुम्भकर्ण के समय के वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) के कुम्भलगढ के शिलालेख और एकलिंग-माहात्म्य से पाया जाता है। इन दोनों में यह भी लिखा है कि समरसिंह के पीछे उसका पुत्र रत्नसिंह राजा हुआ। उसके मारे जाने पर लक्ष्मसिंह चित्तौड़ की रक्षार्थ म्लेच्छों (मुसलमानों) का संहार करता हुआ अपने सात पुत्रों सहित मारा गया।'

म. म. ओझाजी को मुंहता नैणसी की ख्यात के भ्रष्ट पाठ के कारण यह सारा भ्रम हुआ। नैणसी की ख्यात में, जो हमने अपने प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित कराई है और जिसका पाठ परिश्रमपूर्वक तैयार कराया गया है, इस विषय का कथन निम्न प्रकार लिखा मिलता है—

"रतनसी 'अजैसी रो' [पाठ गलत है—'जैसी रो' चाहिये] भड़ लखमसी रो भाई। पदमिणी रे मामले लखमसी नै रतनसी अलावदी सूं लड़ ने काम आया। एक बार पातसाह चढ खड़ीया हुता सु पछै पुर रा डैरा सूं इणां पाछो त्तेडायो। बारे दिन एक-एक बेटो (गलत पाठ है–'भाई' चाहिए) लखमसी रो गढ सूं उतर लड़ियो। तेरमैं दिन जुहर कर राणो लखमणसी रतनसी काम आया। भड लखमसी रो बेटो अनंतसी जालोर परणीयो हुतो, सु उठै कानड़दे साथै काम आयो सु जालोर में डूंगरी बाजे छै। अरसी साथै कांम आयौ। तिण रो बेटो राणो हमीर चीतोड़ वरस ६४, मास ७, दिन १ राज कियो। १ अजैसी गढ-रोहे काढीयो। तिणरा कुंभावत ककड़, मांकड़ कांम आया। ओझड़, पेथड रा भाखरोत।" (मुंहता नैणसी री ख्यात, भाग १, पृष्ठ १४—राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला प्रकाशन)

नैणसी की ख्यात के लिपिकर्ता ने रतनसी के पिता का नाम, शब्दभ्रम के कारण, 'जैसी' की जगह 'अजैसी' लिख दिया और इस कारण म. म. ओझाजी को इस उल्लेख के बारे में भ्रम होना स्वाभाविक ही था, क्योंकि अजैसी लखमसी का पुत्र था, यह उल्लेख नैणसी के इसी वर्णन में आगे आया है; अतः ओझाजी को नैणसी के कथन में परस्पर विसंगति दिखाई देना स्वाभाविक है। रत्नसिंह भड लक्ष्मणसिंह का भाई था, यह कथन शायद, नैणसी के सिवा अन्य किसी ख्यात या काव्य ग्रन्थ में, ओझाजी को उस समय नहीं मिला था, इसलिए तथा नैणसी की ख्यात का भी 'जैसी' के बदले 'अजैसी', ऐसा गलत नाम वाला पाठ देखने में आया, अतः उनको नैणसी के कथन को अप्रामाणिक मानना पड़ा। पर, वास्तव में, नैणसी का उल्लेख सर्वथा संगत ही है, क्योंकि वह उसको भड़ लखमसी का भाई भी स्पष्ट कह रहा है और दोनों भाई पद्मिनी वाले युद्ध में काम आये, यह भी साथ में स्पष्ट बता रहा है। रत्नसिंह लखमसी का छोटा भाई था, यह अब आगे दिये जाने वाले 'अमरकाव्य' के विस्तृत उल्लेख पर से सिद्ध हो रहा है। लखमसी सीसोदे शाखा वाले जयसिंह का पुत्र और भीमसिंह का पौत्र था, यह तो मेवाड़ के सभी ज्ञात लेखों से सिद्ध है ही।

'जैसी' और 'अजैसी'-विषयक यह नाम-भ्रम केवल नैणसी की ख्यात में ही

नहीं मिलता, परन्तु इस प्रकार की अन्यान्य ख्यातों और ग्रन्थों आदि में भी उपलब्ध होता है। उदाहरणस्वरूप, कवि मान कृत 'राजविलास' ग्रन्थ में भी भीमसिंह के पुत्र के रूप में 'जयसी' की जगह 'अजयसी' नाम लिखा है। यथा—

भीम सरिसे भारथनि, भल भीम भलाया।
सत्रव कहूं न रहि सकै, सब जगत सुधाया॥
रान अजयसी वीर रस, खल जूह खिलाया।
नारद तुंवर नच्चिया, गुण ग्रंधव गाया॥
लखमसीह जस लोभीया, वसु घण वरसाया।
राजस गुण जुत रति रवन, अवतार उपाया॥

यह राजविलास भाषा-ग्रन्थ कवि मानसिंह ने महाराणा राजसिंहजी के समय में बनाया। राजसिंहजी की मृत्यु सं० १७३७ में हुई थी अतः उसके पहले ही ५-७ वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ बना होगा। इसमें सीसोदे की शाखा वाले राणा-पदधारी सामन्ताधिपों की वंशावली दी है, जिसमें हमीर के पूर्वजों के नामों में भीम, अजयसिंह, लखमसी, अरसी और हमीर यह क्रम दिया है, जब कि राजप्रशस्ति आदि अन्य ग्रन्थों और शिलालेखों में स्पष्टतया 'जयसिंह' का नाम दिया गया है। राजविलास की भूमिका में इस वंशानुक्रम की शुद्ध तालिका दे दी गई है और उसमें 'अजयसिंह' की जगह 'जयसिंह' नाम दिया गया है। (राजविलास, भूमिका, पृष्ठ १६)

स्वयं म. म. ओझाजी ने भी अपने 'उदयपुर राज्य का इतिहास' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में, शिलालेखों आदि के आधार पर राणा शाखा की विशुद्ध वंशावली का जो तुलनात्मक कोष्ठक दिया है उसमें भी इस शाखा के १२ वें क्रमांक पर, भीमसिंह के बाद 'जयसिंह', ऐसा ही नाम दिया है। केवल एक मुंहता नैणसी के ख्यात वाले कोष्ठक में अजयसिंह नाम लिखा है जो उपरि उल्लिखित लिपिकर्ता के भ्रम के कारण ही है। (म. म. ओझाजी का उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ५०७)।

म. म. ओझाजी ने नैणसी की ख्यात का जिक्र करते हुए जो यह लिखा है कि—'वह एक जगह तो रतनसी को समरसिंह का पुत्र लिखता है और दूसरी जगह अजैसी का पुत्र और भड़ लखमसी का भाई लिखता है, सो यह दूसरा कथन विश्वासयोग्य नहीं मालूम देता :' ओझाजी को नैणसी के कथन में जो विसंगति मालूम दी उसका उक्त प्रकार से 'जैसी' के स्थान पर 'अजैसी' शब्द का पाठ भ्रमात्मक उल्लेख ही कारण है। और फिर, नैणसी ने रतनसी को

समरसी का पुत्र कहीं नहीं लिखा। उसने तो ख्यात में केवल समरसिंह के बाद चित्तौड़ का राजा 'रावल रतनसी' पदमणी वाला बना, इतना ही सूचित किया है। (देखो, नैणसी की ख्यात, पृ. १३) सो यह उल्लेख तो जैसा हमने ऊपर सिद्ध किया है सर्वथा संगत ही है। इसमें नैणसी के उल्लेख की कोई विसंगति नहीं है।

रत्नसिंह गढमंडलीक लक्ष्मसिंह का छोटा भाई था और सीसोदिया शाखा वाले जैसिंग (जयसिंह) का पुत्र था, इसका स्पष्ट उल्लेख महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के चरित्र-वर्णन-स्वरूप बनाये गये संस्कृत 'अमरकाव्य' में मिलता है। यह काव्य सुप्रसिद्ध भट्ट रणछोड़ कवि की रचना है, जो महाराणा राजसिंह का भी मुख्य राजपण्डित था। इस पण्डित ने राजसिंह के चरित्र-वर्णन-स्वरूप 'राजप्रशस्ति' नामक संस्कृत काव्य की रचना की थी, और यह पूरा काव्य, सुप्रसिद्ध सरोवर राज-समुद्र के तट पर, नौ-चोकी में शिलाओं पर खुदवा कर लगवा दिया था। इस राजप्रशस्ति में भी भट्ट रणछोड़ ने गढमंडलीक लक्ष्मसिंह को जयसिंह का पुत्र कहा है और रत्नसिंह को, उसका छोटा भाई बताकर, पद्मिनी का पति लिखा है। इसी पद्मिनी के निमित्त अलाउद्दीन के साथ घोर युद्ध हुआ जिसमें लक्ष्म-सिंह अपने १२ भाइयों और ७ पुत्रों के साथ मारा गया।

आश्चर्य है कि राजप्रशस्ति में इस प्रकार स्पष्ट उल्लेख मिलने पर भी ओझाजी जैसे विदग्ध विद्वान् का इसकी तरफ क्यों लक्ष्य नहीं गया ?

राजप्रशस्ति महाकाव्य के ३रे सर्ग के प्रारंभ में ही, लक्ष्मसिंह के पूर्वजों की नामावली दी गई है और उसके पौत्र हमीर तक का संक्षेप में निम्न प्रकार से उल्लेख किया है :—

तस्य पुत्रो नरपतिरानाऽस्य जसकर्णकः।
तत्सुतो नागपालोऽस्य पुण्यपालः सुतोऽस्य तु ॥२॥
पृथ्वीमल्लः सुतस्तस्य पुत्रो भुवनसिंहकः।
तस्य पुत्रो भीमसिंहो जयसिंहोऽस्य तत्सुतः ॥३॥
लक्ष्मसिंहस्त्वेष गढमण्डलीकाभिधोऽस्य तु।
कनिष्ठो रत्नसी भ्राता पद्मिनी तत्प्रियाऽभवत् ॥४॥
तत्कृतेऽलावदीनेन रुद्धे श्रीचित्रकूटके।
लक्ष्मसिंहो द्वादश-स्वभ्रातृभिः सप्तभिः सुतैः ॥५॥
सहितः शस्त्रपूतोऽसौ दिवं यातोऽस्य चात्मजः।
एक उर्वरितोऽजैसी राज्यं चक्रे ततोऽरसी ॥६॥

ज्येष्ठः सुतः पितुस्संगे यो हतो तत्सुतो दधे ।
राज्यं हमीरदानीन्द्रो मूर्द्धगङ्गाप्रदर्शकः ।।७।।

(राजप्रशस्ति काव्य, सर्ग ३ पद्य २—७)

राजप्रशस्ति काव्य भट्ट रणछोड़ ने मुख्य करके राजा राजसिंह का चरित्र वर्णन करने के लक्ष्य से बनाया था इसलिये इसमें सीसोदिया राजवंश के पुनरुद्धारक राना हमीर के पूर्वजों का केवल नामोल्लेख करना ही उसने पर्याप्त समझा । परन्तु, इस कवि ने इस के पूर्व महाराणा अमरसिंह (महाराणा प्रताप के उत्तराधिकारी) के चरित्र निरूपणात्मक 'अमरकाव्य' की रचना की थी और इसमें हमीर के पूर्वज सीसोदियाशाखीय रानाओं के विषय में कुछ विशेष परिचय लिखा है, जो उस को मेवाड़ राज्य के प्राचीन वृत्तान्तों द्वारा ज्ञात हुआ था । उपर्युद्धृत राजप्रशस्ति काव्य के जिन ५ पद्यों अर्थात् श्लाकों में जो कथन सूचित किया गया है, उस कथन के विस्तार स्वरूप 'अमरकाव्य' में कोई ८० से अधिक पद्य लिखे गये हैं । अमरकाव्य-कथित वर्णन के आधार पर ही रत्नसिंह विषयक सारी समस्या स्पष्ट हो रही है । अतः हम यहां पर अमरकाव्य-गत इस कथन पर कुछ विस्तार से विवेचन करना चाहते हैं ।

अमरकाव्य का परिचय

इस काव्य की एकमात्र प्राचीन एवं जीर्ण पोथी उदयपुर के सरस्वती-भंडार में उपलब्ध है । इस पोथी के प्रारम्भ के तथा बीच के कुछ पन्ने नष्ट हो गये हैं, जिससे ग्रन्थारम्भ का मुख्य भाग नहीं मिलता तथा बीच में भी कई जगह वर्णन त्रुटित हो गया है । स्वर्गीय ओझाजी को इस ग्रन्थ के देखने का अवसर नहीं मिला । वीरविनोद के कर्ता ने इस ग्रन्थ का उल्लेख तो किया है पर इसका ठीक ढंग से अवलोकन किया गया हो ऐसा उस ग्रन्थ से मालूम नहीं देता ।

इस काव्य में, जैसा कि ऐसे ही अन्यान्य ग्रन्थों में भी दिया गया है, मेवाड़ के राजवंश का प्रादुर्भाव बतलाते हुए सर्वप्रथम गुहिलोत वंश की स्थापना का वर्णन किया गया है । इसी वंश में प्रसूत राजा बाप्प अर्थात् बप्प या बापा ने किस तरह चित्रकूट का राज्य प्राप्त किया, इसका वर्णन दिया गया है, जो पिछले अन्यान्य ग्रन्थों, ख्यातों आदि में भी मिलता है । यही बाप्प या बापा सर्वप्रथम रावल-पद का धारण करने वाला बना । इसी ने चित्रकूट को अपना मुख्य राज्यस्थान बनाया । 'अमर-काव्य' के लेखक के मतानुसार बापा ने ६८ वर्ष तक राज्य किया (अथवा उसकी पूरी आयु ६८ वर्ष की हो) । उसके वंश में पीछे से कर्ण नाम का राजा चित्रकूट का स्वामी बना । उसके माहप और राहप नामक दो पुत्र थे जिनमें राहप अधिक योग्य और पराक्रमी हुआ । उसने किसी एक

शत्रु को जीतकर 'राना' विरुद प्राप्त किया और सीसोद नामक स्थान को आबाद कर वह उसका स्वामी बना। उसके वंश का पीछे से अधिकाधिक अभ्युदय होता गया और वह मेवाड़ राज्य का सबसे मुख्य सामंत-घराना बन गया।

इस सीसोद वंश में, बाद में, भुवनसिंह नामक राजा हुआ जिसकी शरण में, गुजरात के राजा से डर कर चौहान वंशी राजा पीतू (कीतु?) आ कर रहा था। उस भुवनसिंह का पुत्र भीमसिंह हुआ और उसका पुत्र जयसिंह हुआ। यह जयसिंह गढमंडल में जा कर रहा था और उसने उसके आसपास के प्रदेश को अपने अधीन किया था; अतः उसको गढमंडलीक का पद मिला था। इसी जयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मसिंह हुआ जो अपने पिता के राजविरुद गढमंडलीक के उप-पद से पहचाना जाता था। यह बड़ा वीर पुरुष था इस लिये यह 'भड' के विरुद से भी प्रख्यात हुआ।

'अमरकाव्य' में इस गढमंडलीक के पराक्रमों का विस्तार से वर्णन दिया हुआ है। लक्ष्मसिंह के अतिरिक्त जैसिंग अर्थात् जयसिंह के रत्नसिंह, करन आदि अनेक पुत्र थे, जिनमें से रत्नसिंह रावल समरसिंह के बाद चित्तौड़ के राज्य का मुख्य स्वामी बना।

लक्ष्मसिंह के भी अरिसिंह, अनन्तसिंह, अजैसी आदि कई पुत्र थे। भड लक्ष्मसिंह के वर्णन से संबन्धित अमरकाव्य में कोई ६० जितने पद्य लिखे गये हैं। पद्मिनी के विषय को लेकर अलाउद्दीन के साथ के संघर्ष का वर्णन भी इस काव्य में कुछ मौलिक तथ्य के सूचक रूप में दिया गया है, जो अन्य किसी ग्रन्थ में देखने में नहीं आया है। मेवाड़राज्याश्रित अन्य कवियों के प्रशस्त्यात्मक काव्यों में इस वर्णन का कुछ भी सूचन नहीं मिलता है। मेवाड़ के राजवंश का यथा-ज्ञात या यथा-श्रुत वर्णन करने वाला संस्कृत में लिखा गया यह प्रथम ग्रन्थ है। अतः यह काव्य ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

इस काव्य में हमीर से लेकर महाराणा अमरसिंह तक का जो उपयुक्त वर्णन लिखा है वह पिछले अन्यान्य ऐतिहासिक उल्लेखों से बहुत ही सुसंगत मालूम देता है; अतः हमीर के अव्यवहित पूर्ववर्ती उसके पिता, प्रपिता, बाबा आदि का जो वर्णन इसमें है वह अवश्य ही प्रमाणभूत पुरातन उल्लेखों के आधार पर आधारित होना चाहिये।

चित्तौड़ पर अलाउद्दीन के आक्रमण के कारण नष्ट हुई ऐतिह्य सामग्री को संकलित करने का जिस तरह पूर्व में महाराणा कुम्भा ने प्रयत्न किया और उसके आधार पर कुम्भलगढ प्रशस्ति और एकलिंगमाहात्म्य जैसी रचनाओं का निर्माण

हुआ इसी तरह महाराणा प्रताप के समय, अकबर के दुष्टातिदुष्ट आक्रमण के कारण, चित्तौड़ की जो ऐसी साहित्यिक संपत्ति नष्ट हो गई थी, उसका पुनः संकलन महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के समय में किया गया था। पृथ्वीराज-रासो का जो विशालकाय स्वरूप वर्तमान में उपलब्ध है, उसका संकलन भी उसी समय हुआ। रणछोड़ भट्ट का यह 'अमर-काव्य' भी उसी प्रकार के प्रयास का एक फल है। राजप्रशस्ति, राजप्रकाश, अमरप्रकाश आदि और भी ऐसी रचनाएँ उसी समय बनीं जिनमें मेवाड़ के विस्मृतप्राय प्राचीन राजवंश के सूत्रों का अनुसंधान मिलाने का प्रयत्न किया गया। 'अमरकाव्य' के कर्ता के सामने ऐसी कुछ पुरातन एवं अधिक विश्वसनीय सामग्री रही मालूम देती हैं जिसके आधार पर उसने लक्ष्मसिंह-विषयक उक्त प्रकार से विस्तृत और सुसंगत वर्णन लिखा है। हम यहाँ पर इस काव्य का यह पूरा प्रकरण नीचे उद्धृत करते हैं जिससे पाठकों को इसके उल्लेखों का मूल स्वरूप ज्ञात हो जायगा। साथ ही, हम इसके पद्यों का सार देते हैं जिससे काव्य में किस तरह यह सारा वर्णन लिखा गया है, इसका भी पाठकों को ठीक-ठीक ज्ञान हो जायगा।

जैसा कि ऊपर सूचित किया गया है इस काव्य की एक ही प्राचीन एवं जीर्ण हस्तलिखित प्रति उदयपुर के सरस्वती-भंडार में उपलब्ध है, जो प्रायः २०० वर्ष से अधिक पुरानी मालूम देती है पर, यह त्रुटित और खण्डित है। इसके मध्य के कुछ पन्ने मी नष्ट हो गये हैं। लिखावट भी इसकी शुद्ध नहीं है। लिखने वाले के हाथ से बीच-बीच में कुछ शब्द, वाक्य और पंक्तियां भी छूट गई हैं। यह एक सीधा वर्णनात्मक काव्य है। इसमें कहीं-कहीं सर्ग के सूचक कुछ शब्द लिखे हैं, पर वे स्पष्ट नहीं हैं। श्लोकों का क्रमांक आदि भी नहीं दिया गया है। पत्रों के अंक भी बहुत से नष्ट हो गये हैं, जिससे पूर्वापर अनुसन्धान मिलाना भी कठिन बन गया है।

मालूम देता है कि जिस पुरानी प्रति पर से यह प्रति लिखी गई है वह प्रति भी कुछ अशुद्ध और खण्डित थी, क्योंकि इस प्रति में लिपिकर्त्ता ने कहीं-कहीं अक्षर और पंक्तियों के लिए रिक्त स्थान छोड़ रखे हैं, जिसका तात्पर्य यह है कि उस मूल प्रति में भी कोई-कोई स्थल खण्डित था। भट्ट रणछोड़ के बाद इस रचना की सुरक्षा नहीं हो सकी और इसका खास प्रसार भी नहीं हो सका।

यद्यपि इस प्रति पर 'अमर-काव्य' ऐसा अस्पष्ट नाम लिखा हुआ है, पर मूल में कहीं यह नाम नहीं लिखा गया है। इसके अन्तिम भाग में राणा अमरसिंह

का चरित्र-वर्णन अवश्य है, पर वह परिमित रूप में है। जिस तरह महाराणा प्रताप का चरित्र वर्णित किया है उसी तरह अमरसिंह का भी। उसके आगे के भाग में, अमरसिंह की मृत्यु के बाद, जगतसिंह का कितना'क हाल लिखा है और फिर अन्त में राजसिंह के सिंहासनारूढ़ होने का थोड़ा-सा वर्णन दिया है।

अन्तिम श्लोक में यह लिखा है कि इस राजा राजसिंह का समग्र वृत्तान्त राजप्रशस्ति काव्य में दिया गया है, अतः वह सब वहीं से ज्ञात करना चाहिए। यथा—

राजप्रशस्तौ लिखितो निखिलोऽस्य पराक्रमः।
यशस्कारिचरित्रौघस्तत्र पश्यन्तु तत्कथाः ।।

इस कथन से ज्ञात होता है कि भट्ट रणछोड़ कवि ने इस ग्रन्थ की रचना का प्रारंभ तो महाराणा अमरसिंह के जीवनकाल में ही कर दिया था और इसलिए प्रारंभ में ईश्वरादि देवों की जो स्तुति की है, उसमें अमरसिंह के कल्याण और अभ्युदय का उल्लेख ही मुख्य रूप से किया है; पर, महाराणा अमरसिंह की मृत्यु हो जाने पर जगतसिंह राज्यारूढ़ हुए और फिर उनकी भी थोड़े ही समय बाद मृत्यु हो जाने पर राजा राजसिंह राज्याधिष्ठित हुए। राजा राजसिंह अपने पिता जगतसिंह और दादा अमरसिंह से भी अधिक प्रतापी और पराक्रमी निकले। भट्ट रणछोड़ उनका भी राज्यमान्य पण्डित रहा अतः उसने फिर उनके सारे पराक्रमों और यशस्कारी कार्यों का विस्तृत वर्णन करने की दृष्टि से राजप्रशस्ति काव्य की रचना की और पूर्वरचित रचना को अमरकाव्य की संज्ञा देकर, इसे राजप्रशस्ति के पूर्व भाग के रूप में निबद्ध कर दिया। राजप्रशस्ति को राजा राजसिंह ने पूर्व कथनानुसार अपने बनवाये हुए नवीन एवं अनुपम राजसमुद्र नामक सरोवर की पाल पर के नौ-चौकी स्थान पर शिलाओं में खुदवा कर लगवा दिया, जिससे वह सुरक्षित एवं सुप्रसिद्ध हो गया।

प्रस्तुत अमरकाव्य में मेवाड़ राज्य के पूर्व-प्रसिद्ध गुहिलोत वंश एवं उत्तर-काल-प्रसिद्ध सीसोदीया वंश के राज्यकर्त्ताओं की विस्तृत वंशावली दी गई है; इसलिए उदयपुर में उपलब्ध जीर्ण प्रति के अन्त में किसी पण्डित ने पीछे से यह पंक्ति लिख रखी है कि—

श्रीअमर-काव्यवंशावलीग्रन्थोऽयमस्ति।

अर्थात्—यह अमरकाव्य वंशावली-रूप ग्रन्थ है।

कवि हेमरतन रचित

गोरा बादिल चरित्र

अथवा

गोरा बादिल पदमिणी कथा चउपई

[मङ्गलाचरण, कथा प्रारम्भ]

।। श्री गणेशाय नमः ।।

दोहा

सुख संपति दायक सकल, सिधि बुधि सहित गणेस ।
विघन विडारण विनयसुं, पहिली तुझ प्रणमेस ।। १ ।।

ब्रह्म विष्णु शिव सइं मुखइं, नितु समरइं जसु नाम ।
ते देवी सरसती तणइ, पदयुगी करूं प्रणाम ।। २ ।।

पदमराज वाचक प्रभृति, प्रणमो निज गुरु पाइ ।
केलवस्युं साची कथा, काणि न आवइ काइ ।। ३ ।।

नव रस दाखइं नव नवा, सयण सभा सिणगार ।
कवियण मुझ करयो कृपा, वदतां वचन विचार ।। ४ ।।

वीरा रस सिणगार रस, हासा रस हित हेज ।
सांमि धरम रस सांभलु, जिम हुइ तनि अति तेज ।। ५ ।।

सांमि धरम जिणि साचविउ, वीरा रस सविसेष ।
सुभटां महि सीमा लही, राषी खित्रवट रेष ।। ६ ।।

गोरू रावत अति गुणी, बादिल अति बलवंत ।
बोलिसु वात बिहुं तणी, सुणयो सगला संत ।। ७ ।।

रतनसेन राजा तणइ, छलि हूआ अति छेक ।
गोरू बादिल बे गुणी, सत्तवंत सविवेक ।। ८ ।।

युद्ध करी जिम जस लीउ, वसुहा हूआ विख्यात ।
चित्रकोट चावु कीउ, ते निसुणु सहू वात ।। ९ ।।

[चित्रकूट-वर्णन]

चौपई

चित्रकूट पर्वत चउसाल, वसुधा लोचन जिसु विशाल।
सुरनर किंनर तणु निवास, रांम रह्या था जिहां वनवास ।। १० ।।

गिरवर ऊपरि दूठ दुरंग, विषम ठाम गढ अतिहि उतंग।
गयणह पडण विधाता डरो, जाणि कि थंभ दोउ थिर करी ।। ११ ।।

विषम घाट गढ विसमी पोलि, अति ऊंची कोसीसां ओलि।
संचां मांहि घणा सांसता, अणभंग कोट धणी आसता ।। १२ ।।

वांक दुवारा विसमी गली, विकट कोट अति विसमु वली।
अणजाणिउ न सकइ नीकली, कद ही कोइ न सक्कइ कली ।। १३ ।।

मांहि मनोहर महल अनेक, सगला लोक वसइं सविवेक।
त्याग भोग सहु लाभइ तिहां, सुर इम जांणइ इणि गढ़ि रहां ।। १४ ।।

चउरासी चोहटा हटसाल, मणिमय तोरण झाक झमाल।
गोख घणा उंचा आवास, राज भवणि रूंधिउ आकास ।। १५ ।।

घरि घरि गोख घणा पाखती, रंगि रमइं वेठा दंपती।
गोखइं गोखि घणी जालिका, तिहां बेठी दीसइं वालिका ।। १६ ।।

कमल वदन गजगति गामिणी, कोमल तन दीसइं कामिनी।
सात भुंया उंचा आवास, लोक वसइं सहु लील विलास ।। १७ ।।

[रतनसेन राजा और पटराणी का वर्णन]

तिणि गढि राज करइ गहिलोत्र, रतनसेन राजा जस जोत्र।
प्रवल पराक्रम पूर प्रताप, पेसी न सकइ जस घटि पाप ।। १८ ।।

अवनि धणी जग अविचल आण, भालि तपइ जसु वारइ भांण।
वेरी कंद तणु। [१ a] कुद्दाल, रण रसीउ नइ अति रंढाल ।। १९ ।।

पटराणी तसु परभावती, रूपइं रंभा, सीलइं सती।
इंद्र तणइ इंद्राणी जिसी, तेहनइ ते पटराणी तिसी ।। २० ।।

अवर अनेक अछइं तसु नारि, अपछर रंभ तणइ अणुहारी।
पिण मनि मांनी परभावती, तिणि पिणि मोहि लीओ निज पती ।। २१ ।।

सतर भेद भोजन रसवती, केलवि जांणइ ते गुणवती ।
राजा तिणि रीझवीओ घणुं, किसुं घणुं, हिव ते हुं भणु ।। २२ ।।

भोजन भगति करइ ते नारि, तु ते भूप करइ आहार ।
अवर तणउ कीधउ अनपाक, रतनसेन नइं लागइ खाकं ।। २३ ।।

माहोमाहि घणु मनि मोह, सहि न सकइ खिण एक विछोह ।
वीरभांण तसु सुसुत अतिसूर, प्रतपइ तेज तणु घटिपूर ।। २४ ।।

चतुरंग सेन संपूरण साथ, नीतइं राज करइ नरनाथ ।
अरि सगळा नांख्या ऊछेद, खिति धरतां तसु नावइ खेद ।। २५ ।।

सबल सूर साचा ससनेह, छल न करइं नवि दाखइं छेह ।
सुरपति दियइ जिणां री साखि, इसा सुभट सुघरि इक लाख ।। २६ ।।

हय गय पायक रथनी संख, करे न सक्कइ को आकंख ।
इण परि परिगह तणइ पडूरि, रतनसेन राजा भरपूरि ।। २७ ।।

[राजा का भोजन-प्रसंग और राणी का व्यंग वचन]

एक दिवस भोजन नइ समइ, आवी दासी इम वीनवइ ।
सांमि पधारू भोजन भणी, पाक हूआ हुई वेला घणी ।। २८ ।।

आवी बइठो नृप बइसणइ, पटरांणीसुं प्रेमइं घणइ ।
थाल कचोला कनकह तणा, सोवन पाटि पथराव्या घणा ।। २९ ।।

प्रीसइ भोजन भगति भंडार, नारी रंभ तणइ अणुहारि ।
राजा भोजन जीमई रंगि, विचि विचि वात करइ कणयंगि ।। ३० ।।

कदली दलसुं घालइ वाउ, जिमतु जंपइ ते नर राउ ।
आज न भोजन भावइ कोइ, नितु निसवादा तीमण होइ ।। ३१ ।।

शाक पाक सगला पकवांन, धुरि निसवादा लागा धांन ।
रूडी जुगति कर, रसवती, तव ते पभणइ परभावती ।। ३२ ।।

आसंगइ आंणी अभिमान, राणी बोलइ सुणि राजांन ।
भगति न भावइ मुझ केलवी, तु कोइ नारी आणु नवी ।। ३३ ।।

परणु कोई जई पदमणी, ते जिम भगति करइ तुम्ह तणी ।
अम्हे जिमाडी जांणां नहीं, कोप कीउ कामिणि इम कही ।। ३४ ।।

माणवती हुइ महिला मूल, माण गमाडइ विनय समूल।
विनइ गयइ न रहइ सोहाग, विण सोहाग न लाग न भाग ।। ३५ ।।

[राजा की पद्मिनी परिणय की प्रतिज्ञा]

रतनसेन राजा रंढाल, तिजि भोजन ऊठिउ ततकाल।
तु हुँ जु आणु पदमिणि, भगति जुगति जीमुं ते तणी ।। ३६ ।।

ए इम गरवी नारी[१ b] किसुं, नारी आगलि हुं किम खिसुं।
असक्य नहीं हुं आणण नारि, क्युं ए अबला कहइ अविचारि ।। ३७ ।।

[पद्मिनी स्त्री की शोध में राजा का प्रस्थान]

मुंछ मरोडी ऊभु थयउ, गरव ग्रही घर बाहरि गयु।
रतनसेन राजा एकलु, साथि खवास करी इक भलु ।। ३८ ।।

सबल खजीनु साथई लेइ, असिं चडि चाल्या छांना बेइ।
कोइ न जाणइ ए विरतंत, खितिपति मनि अति लागी खंति ।। ३९ ।।

पदमिणि परणी आवुं घरे, नहि तरि रहिस्युं गिरि कंदरे।
विण पदमिणि नवि पोढुं सेज, विण पदमिणि न हसुं हित हेज ।। ४० ।।

एम प्रतिज्ञा कीधी पूर, राजा चालिउ साहस सूर।
वीस त्रीस जोअण चालीया, तव ते बेही इम बोलीया ।। ४१ ।।

ऊषर खेत्र न लागइ बीज, विण झगडा न थपाइ धीज।
विण वादल नवि वरसइ मेह, एक पखु नवि हुइ सनेह ।। ४२ ।।

गाम नही तु केही सीम, अगनि माहि नवि जांमइ हीम।
सेवक जंपइ सांमी सुणउ, प्रगट प्रकासु मुझ मंत्रणु ।। ४३ ।।

मरम पखे किम लहीइ माग, ताण्या विण किम लाभइ ताग।
राजा जंपइ पदमिणि भणी, मइं ए अवनि उलंघी घणी ।। ४४ ।।

पदमिणि तणा पठंगा जिहां, ठावी ठोड वतावु तिहां।
सेवक जंपइ सांमी सुणउ, खरच वरच साथइ छइ घणु ।। ४५ ।।

[राजा के पास पंथी का आना]

पिणि नवि जाणी जां लगि पंथ, तां लगि सगलु गोरष कंथ।
वइठउ भूप जई तरू तलइ, पंथी आविउ इक तेतलइ ।। ४६ ।।

भूख त्रिसि भेदाणु घणुं, पोतुं वीतुं अमलह तणुं।
पंथ तणु वलि पूरू खेद, घटि सगलइ हूउ परसेद ।। ४७ ।।

अटवी माहि घणु आकलइ, पिंणि नवि कोई मांणस मिलइ।
तिणि ते दीठउ भूपति जिसइ, पगतलि आवी पडीयो तिसइ ।। ४८ ।।

राइ किआ सीतल उपचार, वाली चेतन पायुं वारि।
अमल अमोलिक दैई करी, भांजी भूख गई नीसरी ।। ४९ ।।

सावधांन हूउ पंथी तेह, कर जोडी जंपइ ससनेह।
तइं मुझ कीधु अति उपगार, जनम दीउ मुझ बीजी वार ।। ५० ।।

मुझ स-[२a] रिखु को कह्यो काम, हुं सेवक नइ तुं मुझ सांमि।
वलतुं राइ भणइ सविसेस, तइं दीठा बहु देस विदेस ।। ५१ ।।

[पंथी द्वारा पदमिणी और सिंहलद्वीप का पता देना]

पुहवि फिरंतइ तइं पदमिणी, काई नारि कठे ई सुणी।
तव ते जंपइ सुण मुझ धणी, संघल दीपि घणी पदमिणी ।। ५२ ।।

दक्षिण दिसि छइ शंघल दीप, सगलां दीपां माहि प्रदीप।
आडउ आवइ उदधि अथाह, तिणि तसु कोइ न लाभइ माह ।। ५३ ।।

[राजा का सिंहलद्वीप को प्रस्थान]

इम निसुणी राजा रंजीउ, संघल दीप दिसि चालीउ।
पवन वेग चंचल चतुरंग, अंबरि उडचा वेउ तुरंग ।। ५४ ।।

गाम नगर पुर पाटण तणा, मारग माहि उलंघ्या घणां।
अखलित गति उलंघी मही, समुद्र समीपइं आव्या वही ।। ५५ ।।

आगलि उदधि करइ कल्लोल, छिटकी रही चिहुं दिसि जल छोल।
पवन ति कोइ पइसइ नही, तु कुण माणस जाइ वही ।। ५६ ।।

पांणी सुं नवि चालइ प्रांण, उदधि तणा आवइं ऊधांण।
रतनसेन चिति चिंतइ इसुं, हिव जगदीस करीजइ किसुं ।। ५७ ।।

भूपति चिति चमकइ पदमिणी, जलधि वेल पिण वीहामणी।
नइ पिण उंडी गुल पिण मीठ, ए उखाणुं आख्यां दीठ ।। ५८ ।।

वाघ अनइ दो तडि नु न्याइ, ए मुझ आज पहूतु आइ।
केम करूं हिव चिंतुं काइ, मंडु कोई अधिक उपाइ ।। ५९ ।।

[राजा को योगी का दर्शन]

फिरतइ एम पयोनिधि पास, दीठु जोगी एक उदास।
साधइ पवन सदाई तेह, जंगम जोग तणु गुण गेह ।। ६० ।।

सिध साधक जोगेसर जिती, पणमी पासि गयु भूपती।
विनय करी राजा वीनवइ, वलि वलि सिर तसु चरणे ठवइ ।। ६१ ।।

सांमी शंघल दीपह तणु, मुझ मनि हरख अछइ अति घणु।
तुम्ह भेटचां हिव भावठि टलइ,पदमिणी नारि किसी परि मिलइ ।। ६२ ।।

मुझ सुं सांमि करू हिव मया, दुख देखतां बहु दिन थया।
विनय वचन वीनवीआ जिएइ, सु प्रसंन हूओ जोगी तिसइ ।। ६३ ।।

नेत्र ऊघाडी निरखई नूर, आयस मनि हूउ आणंद पूर।
आवु रतनसेन राजांन, नाम कही तसु दीधुं मांन ।। ६४ ।।

विसमय हूउ राजा भ(२b)णी, आ केम वात लही मुझ तणी।
जोगी जंपइ सुणि राजांन, जु तुं आयु इणि मुझ थानि ।। ६५ ।।

तु हिव सगलु होसी भलु, मत मन जाणइ छुं एकलु।
वीद्या अंबरि ऊडण तणी, समरी साही करि समरणी ।। ६६ ।।

[राजा का सिंहल द्वीप पहुँचना और पद्मिनी का परिचय प्राप्त करना]

बे असवार धरी निज वाथ, शंघल दीपि गयु गुरूनाथ।
नगर समीपइ आथा जीसै, आयस हूउ अलोपह तिसइ ।। ६७ ।।

राजा रंजिउ देखी दीप, जे जोवइ ते अतिहि उदीप।
कोलाहल अति कसवु घणु, वणज अनइ व्यापारां तणु ।। ६८ ।।

होइ हीउ दलाइ सही, विरलु कोइक जाइ वही।
आगलि पडहु फिरतु दीठ, तास लगइ ते आव्या नीठ ।। ६९ ।।

पूछण लागा पडह विचार, तव ते जंपइ सुणि असवार।
संघलदीप तणु राजीउ, गुणे करी महिमा गाजीउ ।। ७० ।।

तास बहिनि परतिख पदमिणी, त्रिभुवनि ऊपम नही तसु तणी ।
अहनिसि पदमिणी ते इम बकइ, मुझ भाई जे जीपी सकइ ।। ७१ ।।

तेहनइ कंठि ठवुं वरमाल, इम जंपइ ते अबला बाल ।
हिव ते पडह वजावइ इसु मुझ नइ जीपइ नही को तिसु ।। ७२ ।।

रणवट तणी रहु हिव वात, सतरंज रामति खेलु घात ।
जु कोई मुझ जीपइ सही, तुमइं वात इसी छइ कही ।। ७३ ।।

अरध देस अरधु भंडार, विहचो आपुं अधिक उदार ।
भगिनी वलि परतिष पदमिणी, परणावी दयुं पहिरामणी ।। ७४ ।।

ए मुझ वाचा अविचल अछइ, इम म कहेज्यो न कहिउ पछइ ।
एम सुणी रंजिउ नरराइ, सतरंज रामति आवइ दाइ ।। ७५ ।।

भूप भणइ संभलि मुझ वात, सतरंज रामति केही मात ।
जे जाणु ते लेज्यो दाण, पिण तुम्ह वात अछइ परमाण ।। ७६ ।।

एम कही ते मेल्हिउ माहि, रामति ऊपरि अधिकी चाहि ।
तिणि जाई संघलपति पासि, वीनवोउ सहु वचन विलास ।। ७७ ।।

शंघलपति मनि हरखिउ घणुं, तेडावी दीधुं वेसणुं ।
आगत सागति करि अति घणी, वात बिहुं रमवानी वणी ।। ७८ ।।

वेठा वेही रमवा मणी, जाणि कि सिसहर नइ दिनमणी ।
पासइं बेठी ते पदमिणी, कोमल कमल वदन कामिणी ।। ७९ ।।

रतनसेन सतरंजइ रमइ, तिम तिम नारि तणइ मनि गमइ ।
जु किम ई ए जीपइ दाण, तु मुझ वखत सही सुप्रमांण ।। ८० ।।

शंघल (३a) पति मनि शंका करइ, रतनसेन थी मन महि डरइ ।
मनमथ रूप मनोहर वेस, ए कोइक छइ सबल नरेस ।। ८१ ।।

केलि करंतां रामति रंग, शंघल भूपति पांमिउ भंग ।
जेत्र अनइ जस हूउ घणु, परतु पुहतु पदमिणि तणु ।। ८२ ।।

[राजा द्वारा पद्मिनी का पाणिग्रहण]

कंठ ठवी कोमल वरमाल, जय जय शब्द जगावइ बाल ।
शंघलदीप तणु हिव धणी, भगति करइ ते भूपति तणी ।। ८३ ।।

सामहणी अति मेली घणी, परणावी बहिनर पदमिणी ।
अरध देस अरधा भंडार, विहची दीधा अधिक उदार ।। ८४ ।।

परिघल दीधी पहिरामणी, हरखित नारि हूई पदमिणी ।
बि सहस बांदी रूपनिधांन, पदमिणी पासि रहइ सुविधांन ।। ८५ ।।

भमर घणा गुंजारव करइं, पदमिणि परिमलि मोह्या फिरइं ।
पदमिणि तणु पटंतर एह, भूला भमर न छंडइ देह ।। ८६ ।।

पदमिणि रूप कही कुण सकइ, इंद्राणी थी अधिकी जकइ ।
रतनसेन परणी पदमिणी, आस संपूरण हुई मन इणी ।। ८७ ।।

दिन दस पंच तिहां सुखि रही, रतनसेन नृप अवसर लही ।
शंघलपति सुं शिख्या करइ, विनय वचन मुखि अति उच्चरइ ।। ८८ ।।

शंघलपति साचु भूपाल, आदर अधिक करी सुविसाल ।
रंगरली बहिनडनी बहू, शंघल नु पति पूरइ सहू ।। ८९ ।।

[रतनसेन का पद्मिनी को लेकर स्व-स्थान के प्रति प्रस्थान]

सेन घणी शंघलनाथ, रतनसेन नइ हूउ साथि ।
सेना सगली समुद्र मझारि, प्रवहण पूरि करायु पार ।। ९० ।।

समुद्र परइं पुहचावी करी, शंघलनाथइं शिख्या करी ।
प्रीति रीति पालिउ पडिवनु, व्युंही अधिक वधारिउ विनु ।। ९१ ।।

शंघलपति पाछा संचरया, रतनसेन डेरइ ऊतरया ।
भाट कला भुंजाई तणा, डेरइ डेरइ दीसइं घणा ।। ९२ ।।

[चित्तौड़ में रतनसेन की अनुपस्थिति का वर्णन]

वात सुणु हिव ते पाछिली, रतनसेन राजानी भली ।
छानु छिटकिउ भूपति जेह, मरम न जांणइ कोई तेह ।। ९३ ।।

सांझ हूई नवि दीसइ राइ, सांमी विण किम सभा भराइ ।
बाहरि भीतरिं कीधु सोझ, नृपनीं कोई न लाभइ खोज ।। ९४ ।।

माहि जई रांणी वीनवी, तव तिणि वात हती ते चवी ।
सांमि सकइ तु रीसइ घणी, परणेवा चालिउ पदमिणी ।। ९५ ।।

रतनरांग सुत सकज सनूर, सुभट सभा महि बेठु सूर।
कपट वात कूडी केलवी, वीरभांण भाखइ नव नवी ।। ९६ ।।

राजा मांहि जपइ (३b) छइ जाप, जिण थी प्रबल वधइ परताप।
एम कही आघुं जोगवइ, भूपतणी परि भुंइ भोगवइ ।। ९७ ।।

इम करतां दिन हूआ घणा, संकाणा मन सुभटां तणा।
नितु नितु वाहरि करतु केलि, नृप हिव महल न दयइ किम मेलि ।। ९८ ।।

[रतनसेन का चित्तौड़ लौटना]

कुसल अछइ कइ काई वात, मत सुति मारिउ होइ तात।
एहवी वात करइं ते जिसइ, रतनसेन नृप आविउ तिसइ ।। ९९ ।।

च्यारि-सहस हयवर हीसता, बि-सहस गयवर अति गाजता।
बि-सहस बिहुं दिसे पालंखी, त्यां माहे तसु बेठी सखी ।। १०० ।।

विचि पालंखी पदमिणी तणी, चिहुं दिसि भमर रह्या रुणझणी।
ऊपरि कंचण कलस अनेक, एक थकी वलि अधकु एक ।। १०१ ।।

सुभट तणा नवि लाभइ पार, गज गरजारव हय हीसार।
पंच शबद वाजइं वाजित्र, जे सुणतां सवि नासइ शत्र ।। १०२ ।।

इम तसु साथइं सबली सेण, गयणंगणि बहु ऊडई रेण।
आव्या चित्रकोट तलहटी, हुइ कोलाहल अति कलहटी ।। १०३ ।।

वीरभांण संकाणु माहि, सुभट सहू धाया असि साहि।
परदल आविउं जांणी करी, हाटे हलफल हूई खरी ।। १०४ ।।

ततरइ आविउ नृपनु दूत, कागल लेई माहि पहूत।
वीरभांण वाची सहु वात, धन्य दिवस मुझ आविउ तात ।। १०५ ।।

विनयवंत सांम्हउ दोडीउ, कपट तणु पडदु छोडीउ।
सुभट सहू धाया ससनेह, जोअण आया लोक अछेह ।। १०६ ।।

सकल लोक जई लागा पाइ, कुसल खेम पूछइ नरराइ।
रतनसेन चडीओ गज गाहि, महा महोछवि आविउ माहि ।। १०७ ।।

हूउ पइसारू पूगी रली, ठोडि ठोडि गूडी ऊछली।
पदमिणि नारी परणी तणु, जय जयकार हूउ जस घणु ।। १०८ ।।

महल मनोहर दीधु माहि, तिणि ते पदमिणि करइ उछाह।
बि-सहस पासि रहइं छोकरी, चंचल चपल रूप सुन्दरी ॥ १०९ ॥

[रतनसेन और पद्मिनी का स्नेहमय जीवन]

हा

हिव पदमणिसुं प्रेमरस, सुखि झीलइ ससनेह।
पंच विषय सुख भोगवइ, गय-गमणी गुण गेह ॥ ११० ॥

वादल महि जिम वीजली, चंचल अति चमकंति।
महल माहि तिम ते तणु, झलहल तनु झलकंति ॥ १११ ॥

पान प्रहासइ पदमिणी, गलि तंबोल गिलंति।
निरमल तनि तंबोल ते, देह माझे दीसंति ॥ ११२ ॥

हंस गमणि हेजइं हसइं, वदन कमल विहसंति(४a)।
दंतकुली दीसइ जिसी, जाणि कि हीरा पंति ॥ ११३ ॥

प्रेम संपूरण पदमिणी, सांमि घणुं ससनेह।
विलसइं जे सुख विषयना, कहि कुण जाणइ तेह ॥ ११४ ॥

राति दिवस रूधो रहइ, नरपति पदमिणि पासि।
भमर तणी परि भूपती, अलुभि रहिउ आवासि ॥ ११५ ॥

चंदन तरवरि जिम चडी, वीटइ नागर वेलि।
तिम ते कामिणि कंतसुं, विलगि रहइ गुणगेलि ॥ ११६ ॥

कवित कथा रस कांम रस, गाह गूढ गुण गोठि।
पदमिणि प्रीतम रीझिवा, जाणि कि वास्यां होठि ॥ ११७ ॥

नारी निरमल नेह रस, सुधा सरोवर सार।
तास माहि नृप झीलतु, पामि न सक्कइ पार ॥ ११८ ॥

[राघवचेतन व्यास का प्रसंग वर्णन]

चोपई

राजा रमलि करंतु रहइ, इम केताइक दिन निरवहइ।
सगला लोक वसइं सुखवास, आवासे लागा आवास ॥ ११९ ॥

तिणि पुरि राघवचेतन व्यास, विद्यासु अधिकु अभ्यास।
राजा तिणि रीझवीउ घणु मुहत घणु द्यइ व्यासां तणु ।। १२० ।।

राय भवणि नितु प्रति संचरइ, भारत वात वखाणइं करइ।
अमहलि महलि सदा संचरइ, राजलोक महि हींडइ फिरइ ।। १२१ ।।

एक दिवस पदमिणि नइ पासि, राजा वेठउ करइ विलास।
नेह नितंबनि चुंबन करइ, राजा आलिंगन आचरइ ।। १२२ ।।

तिणि प्रस्तावइं राघव व्यास, पुहतु पदमिणि तणइ अवासि।
ते देखी राजा खुणसीउ, राघव ऊपरि कोप ज कीउ ।। १२३ ।।

भमह चडावी कीउ त्रिसूल, कोप तणु जे कहीइ मूल।
राघव पिण मन माहे डरिउ, विण प्रस्तावइं हुं सचरिउ ।। १२४ ।।

श्लोक

द्वंद्वालापनभेषजभोजनसमयसमागमे स्त्रीणां।
अनिवारितोऽपि तिष्ठति, स किल सखे व्यक्तनागरिकः ।। १ ।।

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते।
अदत्तमासनं भेजे स पार्थ पुरुषोऽधमः ।। २ ।।

अनिवेदितप्रवेशी असदृशभाषी परासनग्राही।
कायस्पर्शी च नरः क्षणेन विद्वेषतां याति ।। ३ ।।

चोपई

चतुर तणी ए नही चातुरी, अणतेडिउ आवइ फिरि फिरी।
वात गोठि अणरुचती करइ, काढतां ई नवि नीसरइ ।। १२५ ।।

बिहुं जणां विचि त्रीजु थाइ, अमहल माहे आघु जाइ।
अणबोलायु बोलइ घणु, अणदीधु वलि ल्यइ बेसणु ।। १२६ ।।

डीलइं डील (४b) लिगाडी घसइ, वात करंतु आपे हसइ।
मनि जांणइ हुं खरू सुजांण, मूरिख जनरा ए अहिनांण ।। १२७ ।।

एकंतइं अस्त्री भरतार, रामति रमतां हुइं अपार।
कन्हइं जई ऊपाइ काणि, मूरिख जनरा ए अहिनांण ।। १२८ ।।

इम मनि खुणसिउ राजा घणुं, मान मरोडचुं व्यासां तणुं ।
कीधी रीस घणी ते राइ, जिणथी तन धन जीवित जाइ ।। १२९ ।।

विलखु हुइ ऊतरीउ व्यास, नीठ पहूतु निज श्रावासि ।
सांमि तणी जव थाइ रीस, तव जांणे रूठउ जगदीस ।। १३० ।।

वलतां व्यास न तेडचा माहि, मांन मुहतथी मुंक्या ठाहि ।
इणि मुझ दीठी ए पदमिणी, श्रांखि हरावुं हुं ए तणी ।। १३१ ।।

व्यास सुणी इम मनि बीहनु, कुण वेसास करइ सीहनु ।
राजा मित्र कदी नवि होइ, नवि दीठउ नवि सुणीउ कोइ ।। १३२ ।।

काव्यं

काके शौचं द्यूतकारेषु सत्यं क्लीवे धैर्यं मदचपे तत्वचिंता ।
सर्पे क्षांतिः स्त्रीषु कामोपशांती राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ।।१।।

ग्रत्यासन्ना विनाशाय, दूरस्था निःफला मताः ।
सेव्या मध्यस्थभावेन, राजावह्निगुरुस्त्रियः ।।२।।

कविरकविः पटुरपटुः, सूरो भीरूश्चिरायुरल्पायुः
कुलजः कुलेन हीनो भवति नरो नरपतेः कोपात् ।।३।।

इम चिंती राघव मनि डरइ, नृप खुणसांणइ खिण न विसरइ ।
नृपनी खुणसि न होइ भली, नितु २ हाणि हुइ एकली ।। १३३ ।।

[राघव व्यास का चित्रकोट त्याग एवं दिल्ली गमन]

इम श्रालोची राघव व्यास, चित्रकोटनुं छांडिउ वास ।
मांणस मुहरइ लेई करी, गढथी छांनु गु नीसरी ।। १३४ ।।

श्लोक

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रांमं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ।।१।।

जातु जातु डिल्ली गयु, तिहां जाई नइ परगट थयु ।
गांम माहि हूउ परसिद्ध, ज्योतिष निमित घणु जस लीध ।। १३५ ।।

भणइ भणावइ शास्त्र अनेक, वात वखाण करइ सविवेक ।
नवरस सयण सभा रीझवइ, सित सित अरथ करी सीखवइ ।। १३६ ।।

पूरु घटि विद्या परवेस, तेहनई केहा देस विदेस ।
विद्या माता विद्या पिता, विद्या सयण सगा (५a) सासता ।। १३७ ।।

विद्या वित्त तणु भंडार, विद्या घाट सोलइ सिणगार ।
मान मुहत जस विद्या थकी, वितथी विद्या अधिकी जकी ।। १३८ ।।

श्लोक

कोऽतिभारः समर्थानां, किं दूरं व्यवसायिनाम् ।
को विदेशः सुविद्यानां, कः परः प्रियवादिनाम् ।।१।।
विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रछन्नगुप्तं धनम् ०।।२।।

[दिल्लीपति अलावदीन बादशाह का वर्णन]

चोपाई

डिल्लीपति पतिसाह प्रचंड, अवनि एक तसु आण अखंड ।
अलावदीन नवखंडे नाम, नृप सहु तेहनइं करइ सिलाम ।। १३९ ।।

एकछत्र धर सगली धरइ, सुर नर सहु को तिणथी डरइ ।
अवनि तणु अधिकु अभिलाख, लसकर तसु नव त्रिगुणा लाख ।। १४० ।।

[राघव का दिल्लीपति अलाउद्दीन से मिलना]

तिणि ते सुणीउ बंभण गुणी, तेडाविउ डिल्लीनइ धणी ।
व्यासि जइ दीधी आसीस, जांणि के बेठो छइ जगदीस ।। १४१ ।।

व्यासि कह्या तसु कवित अनेक, सभा सहित रीझिउ सविवेक ।
आगे ई थो बंभण गुणी, पातिसाहि दी पहिरामणी ।। १४२ ।।

मांन मुहत वधीउ पुर माहिं, पूछइ तेडी नितु पतिसाह ।
उलगतां तूठउ अवनीस, पूगी राघव तणी जगीस ।। १४३ ।।

वास्या गांम ग्रास दे घणा, राघव चेतन बेही(?) जणा ।
पातिसाह पासइ नितु रहइ, राघव कवित कथा नितु कहइ ।। १४४ ।।

इक दिन आविउ ए अभिमांन, रतनसेन मुझ मलीउ मांन ।
वालु वयर किसी परि एह, सांमिधरम नइं दीधु छेह ।। १४५ ।।

तु हुं जु पदमिणि अपहरू, चित्रकोटथी अलगु करूं ।
पदमिणि नारि खरी पडवडी, लगि पतिसाह करूं परगडी ।। १४६ ।।

राघव चिंतइ अधिक उपाइ, प्रगट वात मुखि न कहइ काइ ।
भाट एकसुं भाईपणुं, कीधुं मान मुहत दे घणुं ।। १४७ ।।

हीआ माहि आलोची हेत, खोजासुं कीधु संकेत ।
वित्त बिहुनां दीधु घणुं, मित्र करी कीधुं मंत्रणुं ।। १४८ ।।

सभा माहि काढेयो घणी, वात किसी परि पदमिणि तणी ।
[सुलतान की सभा में पद्मिनी स्त्री का वर्णन]
अन्न दिवसि बेठउ सुलितांण, मिली सभा सहु रांणो रांण ।। १४९ ।।

अति सुकमाल पसम पडवडी, कलहंस पंखि तणी पंखडी ।
अति सुंदर करि धरी सभाउ(५b), तव तिणि भाटि दीउ ब्रह्माउ ।। १५० ।।

भाट वाक्यं

एक छत्र जिणी पृथी, धरीउ निश्चल धर ऊपरि
आण कित्ति नव खंडि, अदल कीधी दुनि भीतरि ।।
नल विन्नल विझ्झाडि, उदधि कर पाउ पखालीय ।
अतेउर रति रंभ, रूप रंभा सुर टालीय ।
हेतमदान कविमल्ल भणि, अमर कित्ति वे वखत गिणि ।
दीठउ न को रवि चक्र तलि, अलावदीन सुलिताण विण ।। १५१ ।।

चोपई

कवित सुणी रीझिउ सुलितांन, भाट प्रतइं दीधु बहु मान ।
हाथि किसुं पूछइ पतिसाह, तव ते भाट भणइ गुणगाह ।। १५२ ।।

भाट वाक्यं

गाथा

माण सरोवर मझ्झे, निवसइं कलहंस पंषीया बहवे ।
ताणं चिय सुकमाला, एष सा पंखी करे मझ्झ ।। १५३ ।।

चोपई

इम निसुणी जोइ सुलितांन, नव नव मउज महा असमांन ।

सोहइ पसम महा सुकमाल, ते देखी जंपइ भूपाल ।। १५४ ।।

इसी सकोमल काई वली, किरण ही वस्त कठें सांभली ।
तव ते भाट भणइ सुविचार, हां सुलितांण कहुं अवधारि ।। १५५ ।।

पदमिणी नारि इसी पातली, अति सुकमाल सकोमल वली ।
एह थकी वलि अधिकी तेह, सुगुण सकोमल नइ ससनेह ।। १५६ ।।

तव ते भूप भणइ पदमिणी, काई नारि कठे ई सुणी ।
भाट भणइ ए अवसर लही, गोरीपति निसुणइ गहगही ।। १५७ ।।

भाट वाक्यं

भाट भणइ सुणि भूप, रूप अति रंभ समांणी ।
हइं तुझ हरम हजार, संख कुण लहइ समांणी ।।
ता महि पदमिणि काइ, हुसी तुरकिणि हिंदुआणी ।
अदल आज तू राज, अवर कोइ राउ न रांणी ।।
तुझ महल माहि पदमावती, गिणत नारि होसी घणी ।
सुणि मीनति सुलितांण विण, मइं न काइ बीजी सुणी ।। १५८ ।।

चौपई

इम निसुणी खोजु खलभलइ, पातिसाह बइठउ संभलइ ।
आसंगाइत बोलइ इसु, तइ रे भाट कहिउं ए किसु ।। १५६ ।।

खोजा वाक्यं

मम भणि भट सुकवित, खुंद खोजु दयइ पूरू ।
रे रे सबद-फरोस, सिबद हरमां लगि सूरू ।
कहां सु रे पदमिणी, सेज रायनकी सोहइ ।
सुर नर गण गंध्रव्व, पेखि त्रिभवन मन मोहइ ।।
सुंखिणी सबइ सुलितांण घरि, कोपि हुए बंदिण रसइ ।
रे खोजा ला इतमार, सुणि पातिसाह मुलके हसइ ।। १६० ।।

[राघव व्यास द्वारा पद्मिनी स्त्री का लक्षण वर्णन] [६b]

आगलि बेठउ राघव व्यास, पुस्तक ऊपरि अधिक प्रयास ।
सइं मुखि पूछइ इम सुलितांण, पदमिणि नारि तणा इहनाण ।। १६१ ।।

पातिसाह वाक्यं

कुंडलीउ

आलिम साहि अलावदी, पूछइ व्यास प्रभाति ।
रतनपरीक्षा तुम्हि करु, त्री की केती जाति ।
त्री की केती जाति, कहंइ राघव सुविचारी ।
रूपवंत पतिव्रता, प्रिया सो होइ पियारी ।
हस्तिणि कि चित्रिणि सुंषिणी, पुहवि वडी पदमावती ।
इम भणई विप्र साचु वचन, आलिम साहि अलावदी ।। १६२ ।।

अथ पदमिनी लक्षणं

रूपवंत रति रंभ, कमल जिम काय सुकोमल ।
परिमल पुहप सुगंध, भमर बहु भमइं वलावल ।
चपकली जिम चंग, रंग गति गयंद समांणी ।
सिसिवयणी सुकमाल, मधुर मुखि जंपइ वांणी ।
चंचल चपल चकोर जिम, नयण कंति सोहइ घणी ।
कहि राघव सुलिताण सुणि, पुहवि इसी हुई पदमिणी ।। १६३ ।।
कुचयुग कठिन कठोर, रूपि अति रूडी रांमा ।
हसित वदन हित हेज, सेज नितु रहइ सकांमा ।
रूसइ तूसइ रंगि, संगि सुख अधिक उपावइ ।
रागरंग छत्रीस गीत, सुर गांन सुणावइ ।
स्नान मांन तंबोल रस, रहइ अहोनिसि रागिणी ।
कहि राघव सुलितांण सुणि, पुहवि इसी हुई पदमिणी ।। १६४ ।।
बीज जेम झबकंति, कंति कुंदण ज्युं सोहइ ।
सुर नर गण गंध्रव्व, पेषि त्रिभवन मन मोहइ ।
त्रिवली तलि तनु लंक, वंक नहु वयण पयंपइ ।
पतिसुं प्रेम सनेह, अवरसुं जीह न जंपइ ।
सामिभगत ससनेहला, अति सुकमाल सुहामणी ।
कहि राघव सुलिताण सुणि, पुहवि इसी हुइ पदमिणी ।। १६५ ।।
धवल कुसम सिणगार, धवल बहु वसत्र सुहावइ ।
मोताहल मणि रयण, हार हृदयस्थलि भावइ ।
अलप भूष त्रिसि अलप, नयणि बहु नीद्र न आवइ ।

आसणी अंग सुरंग, जुगति सुं काम जगावइ ।
भगति जुगति भरतार सुं, करइ अहोनिसी कांमिणी ।
कहि राघव सुलितांण सुणि, पुहवि इसी हुइ पदमिणी ।। १६६ ।।

अथ श्लोकाः

पद्मिनी पद्मगंधा च, पुष्पगंधा च चित्रिणी ।
हस्तिनी मद्यगंधा च, मत्स्यगंधा च सुंखिणी ।। १६७ ।।

पद्मिनी स्वामिभक्ता च, पुत्रभक्ता च (६b) चित्रिणी ।
हस्तिनी आत्मभक्ता च, कलहभक्ता च सुंखिणी ।। १६८ ।।

पद्मिनी करलकेशा च, तरलकेशा च चित्रिणी ।
हस्तिनी ऊर्द्धकेशा च, बरड़केशा च सुंखिणी ।। १६९ ।।

पद्मिनी सूर्यवदनी, चंद्रवदनी च चित्रिणी ।
हस्तिनी कमलवदनी, काकवदनी च सुंखिणी ।। १७० ।।

पद्मिनी मधुरवांणी च, कोकिलावांणी चित्रिणी ।
हस्तिनी हस्तिवांणी च, काकवांणी च सुंखिणी ।। १७१ ।।

पद्मिनी श्वेतशृंगारा, रक्तशृंगारा चित्रिणी ।
हस्तिनी मत्तशृंगारा, कुंठशृंगारा सुंखिणी ।। १७२ ।।

पद्मिनी पान राचंति, चित्त राचंति चित्रिणी ।
हस्तिनी दान राचंति, कलह राचंति सुंखिणी ।। १७३ ।।

पद्मिनी पुहर-निद्रा च, बि-पुहर-निद्रा चित्रिणी ।
हस्तिनी त्रि-पुहर-निद्रा, अघोर-निद्रा च सुंखिणी ।। १७४ ।।

[बादशाह द्वारा राघव व्यास को हरम में पद्मिनी स्त्री का पता लगाने का आदेश देना]

चोपई

इणि परि पदमिणिना अहिनांण, निसुणी हरख धरइ सुलितांण ।
अम्ह घरि हरम परीक्षा करु, पदमिणी हुइ ते जूदी धरु ।। १७५ ।।

व्यास भणइ संभलि सुलितांण, तुं मुझ साहिब सुगुण सुजांण ।
हुं तुझ हरम निरखुं नहीं, विण निरख्या क्युं परखुं सही ।। १७६ ।।

म कहसि वात निहालण तणी, तव ते जंपइ डिल्ली-धणी ।
साहि कहइ संभलि हो व्यास, मणिमय एक करु आवास ।। १७७ ।।
तिण माहे तेहना प्रतिबिंब, निरखी परख करु अविलंब ।

[राघव का हरम में पद्मिनी स्त्री का परीक्षण करना]

सामगरी सहु भेली करी, राघव माहे आणिऊ धरी ।। १७८ ।।
मणिमय मंडप माहे व्यास, परखइ हरस तणु परगास ।
हस्तिणि चित्रिणि नइ सु ंखिणी, निरखी नारि, न का पदमिणी ।। १७९ ।।

कवित्तं

रयण महलि अल्लावदी साहि, राघव हक्कारी ।
नयणि नारि निरखेवि, परखि अब हरम हमारी ।।

हंसगमणि हसि चली नारि, निरमल मयमत्ती ।
सुर नर गण गंध्रव्व, पेखि भूले अनिरुत्ती ।।

अइसी सवे अंतेउरी, पभणि व्यास पेखी घणी ।
हस्तिणि चित्रिणि के सु ंखिणी, नही साहि घरि पदमिणि ।। १८० ।।

[पद्मिनी स्त्री प्राप्त करने की वादशाह की उत्कंठा]

चोपइ

इम निसुणी पभणइ पतिसाह, विण पदमिणि केहु उछाह ।
पतिसाही पदमिणी विण किसी, पदमिणि नारि हीया महि वसी ।। १८१ ।।

तु हुं जु परणु ं पदमिणी, केथी कीजइ ए कामिणी ।
हस्तिणि चित्रिणि नई सु ंखिणी, घरि घरि नारि लहीजइ घणी ।। १८२ ।।

विण पदमिणी (७a) नवि पोढु ं सेज, विंण पदमिणि न हसु ं हित हेज ।
विण पदमिणि न करु ं सुख संग, विण पदमिणि न रमु ं रतिरंग ।। १८३ ।।

चमकइ चित महि नितु पदमिणि, वलतु ं जंपइ डिल्लीधणी ।
कहि राघव किहां छइ पदमिणी, जेह नइ हुइ ते आणु ं हणी ।। १८४ ।।
ठावी ठोड वतावु तेह, जिम जइ ल्यावु ं पदमिणि गेह ।

[राघव व्यास द्वारा सिंहल द्वीप में पद्मिनी स्त्री का पता बताना]

वलतु व्यास पयंपइ एम, पदमिणि नारि लहीजइ केम ।। १८५ ।।

संघल दीपि अछइ पदमिणी, दक्षिण दिसि विचि धरती घणी ।
आडु आवइ उदधि अथाग, तिणि तेहनु कोइ न लहइ माग ।। १८६ ।।

साहि भणइ संभलि मुझ वात, मो. आगलि संघल कुण मात ।
सरग पताल समेतु खणी, काढुं नारिं जई पदमिणी ।। १८७ ।।

[पद्मिनी स्त्री के लिए अलाउद्दीन की सिंहल द्वीप पर चढ़ाई]

संघल ऊपरि चडीउ साहि, कोपाटोप कीउ पतिसाहि ।
पदमिणि सुं मनि अति अभिलाख, लसकर लारि सतावीस लाख ।। १८८ ।।

असि चडि चालिउ आलिम जिसइ, दह दिसि देस संकाणा तिसइ ।
गयणंगणि बहु ऊडइ रेण, सूर न सिसिहर सूझइ तेण ।। १८९ ।।

सेसनाग सहि न सकइ भार, आलिम चालिउ हुइ असवार ।
घन जिम गाजइं गयवर घणा, पार न लाभइ सुभटां तणा ।। १९० ।।

कवित्तं

असपति कीउ आरंभ, चडवि चंचल दक्षण धर ।
पातिसाहि कोपीउ, कवण छूटइ संघल नर ।
दल गोरी पतिसाहि, जुडीउ संग्रांम सुहड भड ।
नवलख त्रिगुण तुरंग, सहस सोलह मयगल घड ।
सूरिज्ज खेह लोपवि गई, पायालइं वासुगि बुडिउ ।
चिहुं चक्कराइ संसय पडचा पातिसाहि किसु परि चडिउ ।। १९१ ।।

[अलाउद्दीन का सेना को समुद्र पार करने का आदेश]

चोपई

आलिमसाहि कीउ इलिगार, साथइं सबला जोध जूझार ।
अखलित गति उलंघी मही, समुद्र समीपइं आव्या वही ।। १९२ ।।

रण-रसीउ नइ अति रंढाल, आलिमसाहि करइ धख चाल ।
बूरी समुद्र करूं थलखंड, संघलदीप करूं सितखंड ।। १९३ ।।

पकडु संघलपति जीवतु, पदमिणि आणु तु हुं हतु।
एम कहीं ऊतरीउ साहि, लसकर दीधु ले जल माहि ।। १९४ ।।

छडे पयाणे जाउ छंडि, संघलदीप करु सितखंड।
एम हुकम आलिमनु हूउ, लसकर बूडी माहे हूउ ।। १९५ ।।

आलिम नइ अति चडीउ कोप, कोप तणु कीधु आटोप (७b) ।
प्रवहण नाव घडाव्या नवा, चडीया जोध वली जूझिवा ।। १९६ ।।

लाख लाख एकीकु लहइ, रण-रसीउ कुण वांसइं रहइ।
आगलि एम कहइ वलि घणो, ए वेला छइं सुभटां तणी ।। १९६ ।।

लंडी भिडी संघल भेलयो, माहि जई माझी झेलयो।
चाल्या जोध घणा जूझार, पांणी माहि कीउ पइसार ।। १९७ ।।

आगलि कहर भमइ भमरीउ, जाणि कि संघलि सुर समरीउ।
ते माहे प्रवहण गा जिसइ, खंडोखंड हूआ सहु तिसइ ।। १९८ ।।

फरीआदे लागी फरीआदि, ऊगारू आलिम अवलादि।
दरीउ दूठ महा दुरदंत, उदधि तणु नवि लाभइ अंत ।। १९९ ।।

वड वड सुभट रह्या जल माहि, अंबुधि न सकइ को अवगाहि।
पदमिणि नारि पडउ पातालि, आलिम ए तुम्ह छंडु आलि ।। २०० ।।

वलतु आलिम इणि परि कहइ, मो आगलि क्यु दरीउ रहइ।
सुभट मूआ ते गई वलाइ, अवर घणेरा आणु जाइ ।। २०१ ।।

वरस सहस इक रहिस्यु इहां, विण पदमिणि किम जाउं तिहां।
असिपति कीधु वलि आरंभ, तेडया सुभट घणा सारंभ ।। २०२ ।।

सुभट सहू संकाणा हीइ, फोकट दरीआ माहे दीइ।
काम काज नवि सीझइ कोइ, हठीउ आलिम न रहइ तोइ ।। २०३ ।।

आलिम मनि अति अमरस घणु, पार न पामइ दरीआ तणु।
खाण पीण निद्रा परिहरी, असिपति मनि हूई चिंता खरी ।। २०४ ।।

कवित्तं

कोपि चडिउ सुलितांण, खांण अर पांन न भावइ।
ला इतमार जनारदार, पदमिणि दिखलावइ।

करि सिलांम बहु दुवाहि, खोदि वन जोइ सु परि ।
संघल दीपि समुद्र, अछइ पदमिनी घरि-घरि ।
हुसीयार हू अरदास सुणि, एक अद्ध पेखां जहां ।
पेखवि समुद्र सांसइ पडिउ, कुण खुदाइ खूते कहां ।। २०५ ।।

पुनः कवित्तं

राघव चेतन व्यास*............।।२०६।।

[समुद्र पार करने में सेना को परेशानी]

चोपई

सुभट घणा सज कीधा वली, नावइं नाव घणी सांकली ।
इणि परि आलिम ऊभु कहइ, लाख तुरी जाइ ते लहइ ।। २०७ ।।

संघल भेलइ जे उंबराउ, बिवणु तेहनइ करूं पसाउ ।
महि जई जे माझी हणइ, त्रिगुण पसाउ करूं, तेहनइ ।। २०८ ।।

पेसी आणइ जे पदमिणी, धर बहुलीनु हुइ ते धणी ।
लालच लोभ दिखाडइ घणा, मन्न मनावइ सुभटां तणां ।। २०९ ।।

पदमिणिनु अधिकु अभिलाष, सज्ज कीया सुभटां नव लाख ।
सुभट सहू मनि शंका करइं, आलिमथी व (८) लि अधिका डरइं ।। २१० ।।

वाघ अनइ दोतडिनु न्याइ, लसकरी आंनइ पुहतु आइ ।
जिणि परि तिणि परि मरिवुं सही, सुभट सहू आव्या सांमही ।। २११ ।।

[सेना का राघव व्यास से परामर्श और राघव का सुझाव]

सुभटे छानु तेडचो व्यास, रे पापी तइं घालिउ पास ।
कुमति किसी तइं दीधी एह, सुभट सहूनु कीधु छेह ।। २१२ ।।

हिव तइं कोई हुसी उपाइ, जिणथी आलिम निज घरि जाइ ।
व्यास कहइ निसुणु वीनती, सहूइ सुभट हुवु इकमती ।। २१३ ।।

---

* यहां 'राघव चेतन व्यास' का कवित्त होना चाहिए था, जो नहीं दिया गया है; केवल पद्यांक ६ (२०६) दिया गया है ।

हिकमति हेक हलावां नवी, व्यासइं साची मति सीखवी ।
सहस एक साकतिसुं तुरी, आधा आणु गज पाखरी ।। २१४ ।।

पहिरावु सोवन सिणगार, कोडि एक आणु दीणार ।
नाव भरावु बहु नव नवी, पट्टकूल बहु ऊपरि ठवी ।। २१५ ।।

कंचण कलस घणा सिरि ठवु, अणदीठा नर इम सीखवु ।
संघलपति मेल्हिउ छइ डंड, आलिम इवकइ मुझनइ छंडि ।। २१६ ।।

नाकनमणि मइं कीधी एह, हुं छुं तुम्हना पगनी खेह ।
एम कही राखु अभिमांन, जिम बाहुडि जाइ सुलितांन ।। २१७ ।।

अवर उपाइ न दीसइ कोइ, हरखित सुभट हूआ सहु कोइ ।
रातोराति कीया परपंच, छांनां मेल्या सगला संच ।। २१८ ।।

आलिमसाहि न जाणइ वात, आविउ डंड हूउ परभात ।
जागिउ आलिम जगतीधणी, मन माहे थी चिंता घणी ।। २१९ ।।

आगलि आविउ बाहिरि जिसइ, जलधि माहि ते दीठा तिसइ ।
साहिब कहइ किसुं छइ एह, तव त व्यास कहइ ससनेह ।। २२० ।।

सांमि सकहइ तु संघल तणी, परिघल आवी पहिरामणी ।
झलकइं तोरण चूनी चंग, ऊपरि कंचण कलस उतंग ।। २२१ ।।

फरहर नेजा धज फरहरइं, उदधि माहि आवइं इणि परइं ।
आलिम मनि हूउ आणंद, देखी प्रवहण वाहण वृंद ।। २२२ ।।

ते पिण आव्या बाहरि तरी, साकति सगली आगलि करी ।
असि नांखी नइ आव्य धाइ, पातिसाहि नइ लागा पाइ ।। २२३ ।।

डंडडोर हय हाथी घणा, सेवक आव्या संघल तणा ।
विनय करी भाषई वींनती, तुं मोटु छइ डिल्लीपती ।। २२४ ।।

संघलपति तुम्ह पगनी खेह, तिणि माहिमांनी मेल्ही एह ।
ए चूनु होसी तुम्ह पांनि, मया करी हिवकइ दिउ मांन ।। २२५A।।

तुं मोटु जाणे जगदीस, नमतांसुं हिव न करु रीस ।
विनय वचनि राजा रीझीउ, संघलपति (८b) नां सिरिपाउ दीउ ।। २२५B।।

पहिराव्या सगला परधांन, मोटांनी परि दीधुं मांन।
संघलपति युं जे मेल्हीउं, ते सुभटांनां विहची दीउं।। २२६ ।।

मांन मुहतसुं मेल्ह्या तेह, संघलपतिसुं कीउ सनेह।
व्यास तणी सहु समरी वात, मेली धीगडि धातइं धात।। २२७ ।।

[अलाउद्दीन का सिंहल से वापस लौटना और दिल्ली पहुंचना]

कूच कीउ असिपति ततकाल, आविउ डिल्ली पुरि ततकाल।
ठोडि ठोडि गूडी ऊछली, गोखि गोखि बहु नारी मिली।। २२८ ।।

कवित्तं

मिलीया मीर मलिक, साहिजादा हिंदू सहिं।
कहां सु रे पदमिणी, खारि खाधु लसकर सहि।
राघव जंपइ इसु, कहिउ हमारु कीजइ।
आणु माल बहुत, साहि पाछउ वालीजइ।
आ अछइ लाछि अरदास, सुणि असिपति डंड भराईउ।
सुरिताण तांम समझाइ करि, बाहुडि डिल्ली आईउ।। २२९ ।।

चोपई

असिपति आविउ निज पुरि जिसइ, ठोडि ठोडि नर भाषइं तिसइ।
पदमिणि नारि पखे पतिसाह, किम आविउ विण कीइ वीवाह।। २३० ।।

आलिमसाहि हतु आकरु, पिण हिव सरल हूउ पाधरु।
विण परणी आविउ पदमिणी, ठोडि ठोडि भाषइं कांमिणी।। २३१ ।।

आलिम आविउ निज आवासि, लेइ शस्त्र माहि गयु खवास।
माहि मेल्हि ते वलीउ जिसइ, बडकणि बीबी बोलइ तिसइ।। २३२ ।।

पातिसाहि परणी पदमिणी, ते दिखलावु अब हम भणी।
जात्र करां जोवां दीदार, निजरि निहांलां हम इक वार।। २३३ ।।

जसु घरि पदमिणि नही हुइ च्यारि, सगलु सूनु तसु संसार।
तेह तणी सुलतांणी किसी, जेहसुं पदमिणि न रमइ हसी।। २३४ ।।

पातिसाह हिव पदमिणि पखे, ठालु आयु हुइ घरि रखे ।
बीबी विलखु कीउ खवास, आवी पुहतु आलिम पासि ।। २३५ ।।

वात सहू सविसेषी कही, असिपति रीस हीया महि ग्रही ।
आलिम मंडिउ अधिक अभ्यास, ततखिण तेडिउ वलि ते व्यास ।। २३६ ।।

संघलदीप पखे पदमिणी, वले किहां छइ कहि मुझ भणी ।

[राघव व्यास का चित्तौड़ की पद्मिनी का पता बताना और
अलाउद्दीन का चित्तौड़ पर चढ़ जाना]

व्यास कहइ संभलि सुलितांण, इक वलि पदमिणिनु अहिठांण ।। २३७ ।।

चिहुं दिसि चावु गढ चीतोड, (६a) वींझाचल महि विसमइ ठोडि ।
रतनसेन राजा रंढाल, कलह करूर महा कंधाल ।। २३८ ।।

तसु घरि नारि अछइ पदमिणी, सेषनाग सिरि जिम हुइ मणी ।
लेई न सकइ कोई तेह, तिणि करणि शु भाखु एह ।। २३९ ।।

साहि कहइ संभलि हो बंभ, एवडु फोकट कीउ आरंभ ।
बीजी वात सहू हिव तिजु, गढ चीतोड तणु शु गजु ।। २४० ।।

ऊभाऊभि लीउं पदमिणी, जीवत पकडु गढनु धणी ।
सबल सेन ले आलिम चडिउ, धर धूजी वासिग धडहडिउ ।। २४१ ।।

कवित्तं

सलहदार हथीयार, लेइ आगलि अवधारी ।
संभाली सर सेल, माहि भेजी भंडारी ।
बीबी तब पूछीउ, कहां पदमिणि तुम्ही आंणी ।
च्यारि पंच नही पदमिणी, किसी तिसकी सुलितांणी ।
तेडावि व्यास ततखिणिहि, पूछइ वात विगति बहु ।
संघलां टालि जिणि ठांणि हइ, कहां राघव पदमिणि कहु ।। २४२ ।।

हसि बोलइ सुलितांण, कहां राघव पदमिणि कहु ।
रतनसेन गढ चित्रकोट, गहिलोत राइ पहु ।
पलांणीया अलावदी, जल थल अकुलांणइ ।
स्रग्गि इंद्र खलभलिउ, पडचा दह देस भगाणइ ।

फणिवइ पयालि वासुगि दुडिउ, कहइ साहि विग्रह करूं ।
मारूं सदेस हिंदूग्राण कुं, एक एक जीवित धरूं ।। २४३ ।।

[चित्तौड़ में युद्ध के आरम्भ का वर्णन]

चोपई

गढ चीतोड तणी तलहटी, आविउ असिपति इणि परि हठी ।
लाख सतावीस लसकर लार, हथीयारे लागा हथीयार ।। २४४ ।।

मयगल सबल करइं सारसी, हय हीसारव भट पारसी ।
आतसबाजी अधिक अगाज, गोला नालि रह्या बहु गाजि ।। २४५ ।।

दह दिसि मंड्या बहु दुमदमा, सुभट सहू दीसइं सूरमा ।
ढलकइं चिहुं दिसि बहु ढीकुली, न सकइ को पइसी नीकली ।। २४६ ।।

दुमकि दुदामा घूमइं घणा, वाजइं ढोल घणा सांधिणा ।
भभकइं भुंगल भेरी भूर, रणकइं रोस भरचा रणतूर ।। २४७ ।।

हुइ सरणाई, सिंधू, साद, परबत माहि पडइं पडसाद ।
हठीउ आलिमसाहि अभंग, जुद्ध तणा करि जांणइ जंग ।। २४८ ।।

रतनसेन पिण रोसइं चडिउ, दीठउ आलिम (६b) आवी पडिउ ।
सुभट सेन सज कीधी सहू, बलवंत बोलइ वहसे बहू ।। २४९ ।।

साहि भलइं तुं आविउ सही, पिणि हिव नासि म जाए वही ।
नासतां छइ नरनइं खोडि, हुं ठावु छुं इणहि जि ठोडि ।। २५० ।।

हिवइं दिखाडिसु माहरा हाथ, तुं पिण सज्ज करे निज साथ ।
ढीलीपति मत ढीलु रहइ, सुभट तिकौ जे पहिली कहइ ।। २५१ ।।

तुं संघलथी आविउ नासि, तिणि कारणि तोनइं शाबासि ।
तोनइ छइ नासणनी टेव, दीठइ मुंहिम त नासइ हेव ।। २५२ ।।

कीधु कोट सजे साबतु, फिरतां दीसइ अति फाबतु ।
पोलि जडावी पेठा माहि सुभट घणा साह्या गजगाह ।। २५३ ।।

गढरोहु मंडाणु घणु, तिम तिम कोप वधइ बिहुं तणु ।
बेही बलवंत वही दूठ, पूरू परिगह बिहुंनी पूठि ।। २५४ ।।

जे भाजइ ते लाजइं घणुं, कुल अजूआलइं बे आपणुं।
गोला नालि वहइ ढीकली, बाहरि को न सकइ नीकली ।। २५५ ।।

गोफणि गयणि वहइ अति घणी, रीठ पडई अति रोढां तणी।
कुहक बांण करडाटा करइं, लसकर लंघी जाइं परइं ।। २५६ ।।

वांण विछूटइं त्रूटइ तणी, फूटइं फोज चिहुं दिसि घणी।
जूझइं बूझइं सगली कला, भुरजि भुरजि भड ऊछांछला ।। २५७ ।।

झाडइ झंडा पाडइं पाघ, ऊडाडइं धज गयणि अथाग।
ताकइ हाकइ वाहइ तीर, मारइ मयगल मुंगल मीर ।। २५८ ।।

फाडइ डेरा हेरा करी, न सकइ को पेसी नीसरी।
कलली कोप करइं कंधाल, फारक मारि करइं द्यई फाल ।। २५६ ।।

कोट तणा सगला कांगुरा, वीटी बइसइ जिम वांनरा।
वालइ बाधी कवड़ी हणइ, मरण तणु भय मनि नवि गिणइं ।। २६० ।।

रतनसेन वांसइ राजांन, पूरइ पाणी नइ पकवांन।

[युद्ध की विषम स्थिति से बादशाह का चिन्तित होना]

जूझइं सुभट सनेहां सहू, आलिम मनि हूई चिंता बहू ।। २६१ ।।

आलिमसाहि कहइ सांभलु, सुभट सहू को भेला मिलुं।
गढ ऊपाडु द्यु सीधडा, पाडु भुरज विहडुं घडा ।। २६२ ।।

सबल सुरंग दीउ गढ हेठि, देखी न सकइ जिम को द्रेठि।
कोट तणा ढाहु कंगुरा, पाडु खांणि धकावु धरा ।। २६३ ।।

आसि पासि पइसारू करू, कासुं मरणथकी मनि डरू।
लांबी ले नीसरणी ठवु, एकीकु रोढु खेसवु ।। २६४ ।।

लाख लाख ल्यु रोढा तणु, गढ ऊपाडि करु आंगणु।
सुभट सहू को घाया घसी, आलिमसाहि हूउ मनि खुसी ।। २६५ ।।

रणरसीउ जोइ रमि राह, हलकारइ पूठइं पतिसाह।
ढीलीपति ढोउ मंडीउ, पिण नवि कोट चिनी खंडीउ ।। २६६ ।।

सांझ लगइ हूउ संग्राम, पिण नवि सीधु कोई काम।
घणा मराव्या मुंगल मीर, असिपति (१०a) मांनी हीइ हीर ।। २६७ ।।

आलिमसाहि करइ आलोच, लसकर माहि हूउ संकोच।

[सैन्य-संहार से बादशाह का चिन्तित होना और राघव व्यास द्वारा छल-भेद का उपाय सुझाना]

व्यास कहइ संभलि सुलितांण, कोट न लीजइ किम ई प्रांण ।। २६८ ।।

छानु कोइ करु छल भेद, मत परगासु मरम मजेद।
वात करावु कपटइं इसी, साहि हूउ हिव तुम्हसु खुसी ।। २६९ ।।

बोलबंध दिउ मांगइ तिके, करु सुगंद करावइ जिके।
विचलइ नहीं हमांरी वाच, एम कही ऊपाउ साच ।। २७० ।।

मुकु महि पाका परधांन, इम कहवाडु दिउ हम मांन।
तेडी माहि खवाडु खांण, द्रेठि दिखाडु तुम्ह अहिठांण ।। २७१ ।।

पदमिणी हाथइं जीमण तणी, मुझ मनि खंति अछइ अति घणी।
अवर न काई मांगइ साहि, अलप सेन सु आवइ माहि ।। २७२ ।।

एक वार देखी पदमिणी, साहि सिधावइ ढीली भणी।

[शाही प्रधानों का राजा रतनसेन से मिलना]

एम कही मुंक्या परधांन, रतनसेन पूछया दे मांन ।। २७३ ।।

कहुं किम आव्या तुम्हि परधांन, तव ते बोलइं सुणि राजांन।
आलिमसाहि कहइ छइ एम, माहोमाहि करु हिव प्रेम ।। २७४ ।।

बोलबंधु द्यु साचा सही, विचलइ हमांरी नही।
नाकनमणि करि कोट दिखाडि, पदमिणि हाथइं मुझ जीमाडि ।। २७५ ।।

पदमिणि नारि निहालण तणु, मुझ मनि हरख अति घणु।
अवर न काई मागई आथि, जीमे जाउं पदमिणी हाथि।
माहोमाहि करू संतोष, राखु हिव ए वधतु रोष ।। २७६ ।।

कवित्तं

वांकु गढ चीतोड, सकति सुरतांण न लीजइ।
ऊठाईइ मुसाफ बोलि, ज्यु राउ पतीजइ।
दंड द्रव्य नहू लीउं, देस परदल नवि गाहुं।
नही हम गढ की चाउ, राउकुमरी न विव्याहु।

अलावदीन सुरताण कहि, राज माहि नवि आहुडुं ।
राउ रतनसेन मुझकुं मिलइ, नाकनमणि करि बाहुडुं ।। २७७ ।।

प्रधान वाक्यं

हम सु साहि परठव्या, करणकुं वातां भल्ली ।
जइ तुम्हि मानु वात, सहि वहि जाइ डिल्ली ।
करि पदमावति दृष्टि, फेरि चीतोड जि देखुं ।
विग्रह कोइ नवि करूं, बांह दे सब ही रखुं ।
गलि लाइ कंठ पहिराइ करि, बहुत मया आलिम करइ ।
राउ रतनसेन सुणि वीनती, पुहर माहि दूतर तरइ ।। २७८ ।।

*[कीउ उपंग सुलिताण, मंत्र एइ सु उपाई ।
मुझकुं गढ दिखलाउ, आप जनमंतर भाई ।
हुं कृत कम्मज जम्म, सुतु असुरां घर पामी ।
तु पूरव पुन्य प्रमाण, हूउ चित्रकोटह स्वामी ।
दोइ काइ अछइ इक आतमा आवि जम्म मेलु थयु ।
खीमकरण भुज मंत्र सुं, राजा वयण ति मन्नयु ।
खीमकरण भुज मंत्र सुं, राजा वयण ति मन्नयु ।।] २७६ ।।

[बादशाह के प्रधानों को राजा रतनसेन का उत्तर]

चोपई

रतनसेन कहि सुणि परधांन, वातां करतां वाधइ वांन ।
पिणि जु प्रांण दिखाडइ भूप, तु नवि कोई रहइ रस रूप ।। २८० ।।

वात करइ जु आलिमसाह, तु हम मिलवा घणु उछाह ।
असपति आवइ अंगणि वही, प्रापति विण क्युं पामां सही ।। २८१ ।।

बोलबंध द्यइ साचा साहि, अलप सेन सुं आवई माहि ।
अम्ह घरि आइ अरोगु धांन, माहोमाहि वधइ ज्युं मांन (१०b) ।। २८२ ।।

परधांने पूछिउ पतिसाह, वात वणे दीधी निज बाह ।
आलिम सुंस करइं सहि जूठ, मुंहि मीठो मन माहे दूठ ।। २८३ ।।

---

* यह पद्य लेखक ने पीछे से अपनी हस्तलिखित प्रति में समाविष्ट करने के विचार से पत्र के बांए हाशिये पर सं० ७८ के बाद ७९ वें पद्य के रूप में लिखा । इसके अन्त में 'ओळी ३' लिख कर संकेत किया है कि पन्ने की नीचे से ऊपर की ओर तीसरी पंक्ति में इसे जोड़ा जाय । छपी हुई पुस्तक में इस पद्य का क्रम २७६ वां है ।

[राघव व्यास की प्रपंची मंत्रणा और बादशाह का गढ में लश्कर सहित प्रवेश]

राघव व्यासि कीउं मंत्रणु, रतनसेन नृप झेलण तणु ।
नृप मनि कोई नही छल-भेद, खुरसांणी मनि अधिकु खेद ।। २८४ ।।

ऊघाडे मेल्ही गढ पोलि, मिलिया मांणस टोला-टोलि ।
आलिम साथि लिया असवार, लोहइ लुंब्या त्रीस हजार ।। २८५ ।।

कवित्तं

*[गढइं चडचु सुलिताण, नालि उंबरां खवासां ।
भमर एक भुल्लि गु, चंद ज्युं भयु उजासां ।
ए चंदा खाइक्क, दान उर मान समंगल ।
एक चंद चंदणुं, सेज सोहइ रायांघर ।
हुजदार सबे हाजरि खडे, गिरि पदमणि पाउद्धरइ ।
अलावदीन सुलिताण सुणि, आलिम सिरि छत्रां धरइ ।।]

चोपई

व्यास सहित साथइं ततकाल, माहे पेठा सहु समकाल ।
कला इसी का कीधी सोइ, पइसुं तु नवि दीठउ कोइ ।। २८६ ।।

आवी माहि हूआ एकठा, तब सगला दीठा सांमठा ।
रतनसेन मनि खुणसिउ सही, आलिम आविउ अंगणि वही ।। २८७ ।।

नृप पिण सेना सगली सार, असवारे मेल्ह्या असवार ।
तुंगे तुंग मिल्या एकटा, जाणि कि दीसइ वादल-घटा ।। २८८ ।।

आलिम पिण न सकइ आंगमी, न सकइ नृप पिण आलिम गमी ।
आलिमसाहि कहइ सुणि भूप, कांइ तुम्ह मेलु कटक सरूप ।। २८९ ।।

हुं इहां विढवा आविउ नही, गढ जोएनइ जाइसु सही ।
म धरु मन महि खोटु खेद, मुझ मनि कोइ नही छलछेद ।। २९० ।।

नृप जंपइ आलिम अवधारि, कटक कोइ मेलुं न लिगार ।
जइ तुम्ह वचन हूउं हिव इसुं, कटक करी नइ करिवुं किसुं ।। २९१ ।।

---

* यह पद्य भी लेखक ने अपनी मूल प्रति में पहले नहीं लिखा था, बाद में यह पद कहीं से मिलने पर इसको सं० ८३ (२८३) के आगे समाविष्ट करने के लिए काकपद लगा कर संकेत करते हुए वाम पार्श्व में लिख दिया है। छपी हुई प्रति में इसकी क्रम सं० २८६ है।

पिण तइं आण्या त्रीस हजार, किणि कारणि एवडा असवार ।
तुझ मनि काइ सही छइ वात, धूतपणारी दीसइ धात ।। २९२ ।।

आलिम जंपइ नृप अवधारि, प्रांहुणडां नइ इम म पचारि ।
थोडा व्हो अथवा व्हो घणा, झेली लीजइं निज प्रांहुणा ।। २९३ ।।

धांन तणु छइ आज सुगाल, घणा घणा कांइ कहु भूआल ।
अम्हि आव्या था जिमवा सही, विढ़वा कारणि आव्या नही ।। २९४ ।।

जीमणरु जाणु संकोच, खरच करंतां आवइ खोच ।
तु वलि पाछा मेल्हां एह, जिम भाखु तिम राखां रेह ।। २९५ ।।

[राजा रतनसेन द्वारा बादशाह का स्वागत और भोजन समारम्भ]

भूप भणइ संभलि पतिसाह, भलइ पधारचा आलिमसाह ।
वलि तेडावु जांणु जिके, पिण लघु बोल न बोलु बके ।। २९६ ।।

परिघल पांणी परिघल धांन, परिघल घोल घणा पकवांन ।
जीमु भोजन भावइ जिके, पिण लघु बोल न बोलु बके ।। २९७ ।।

बोलि बोलि बे हूआ खुसी, हाथे तालो दीधी हसी ।
माहोमाहि हूउ संतोष, टलीया सगला मनना दोष ।। २९८ ।।

रतनसेन हिव निज घर धणी, भगति करावइ भोजन तणी ।
पदमिणि नारि प्रतइं जई कहइ, आलिम सु हिव जिम रस रहइ ।। २९९ ।।

तिण परि भोजन भगतइ करु, जिम आलिम मनि हरषइ खरु ।
पदमिणि नारि कहइ प्री सुणु, निज करि न करिसु हु प्रीसणु ।। ३०० ।।

षटरस सरस करूं रसवती, प्रीसेसी दासी गुणवती ।
सिणगारु सगली छोकरी, खांति अछइ जु तुम्ह मनि खरी ।। ३०१ ।।

बि सहस दासी रूपनिधांन, पदमिणि पासि रहइ सुविधांन ।
रूप अनोपम रंभा (११a) जिसी, काम तणी सेना हुइ तिसी ।। ३०२ ।।

आसण बेसण सगला तेह, करसी कांम सहू ससनेह ।
सगली साकति करि साबती, मांहि तेडाविउ डिल्लीपती ।। ३०३ ।।

परिघल परठा दीसइ घरणा, जारिण विमान अछइ सुरतरणा।
ठोडि ठोडि दीसइं पूतली, घालइ वाउ चिहुं दिसि वली ॥ ३०४ ॥

अनुपम रतनजडित आवास, अगर कपूर अनोपम वास।
चिहुं दिसि दीसइं चित्र अनेक, मंडप महल महा सुविवेक ॥ ३०५ ॥

तिहां आवी बेठो पतिसाह, मन महि आवइ अधिक उछाह।

[बादशाह द्वारा पद्मिनी की दासियों का दर्शन]

पदमिरिण पांहइं अधिक पडूर, दासी आवि दिखाडइ नूर ॥ ३०६ ॥

इक आवी वेसरण दे जाइ, बीजी थाल मंडावइ ठाइ।
त्रीजी आवि धोवाडइ हाथ, चोथी ढालइ चमर सनाथ ॥ ३०७ ॥

दासी आवइं इम जू-जूई, आलिम मति अति विह्वल हुई।
पदमिरिण आ, कइ आ पदमिनी, सरिखी दीसइ सहु कामिनी ॥ ३०८ ॥

व्यास कहइ संभलि मुझ धरणी, ए सहु दासी पदमिरिण तरणी।
वार वार स्यु झबकु एम, पदमिरिण इहां पधारइ केम ॥ ३०९ ॥

मुष्टि करी रहु साहि सुजांरण, म हवु वलि वलि विकल अयांरण।
ए आवइं ते सगली दासि, प्रमदा पदमिरिण तरणी खवासि ॥ ३१० ॥

देखी दासी रंभ समांन, आलिम मनि अति हूउ गुमांन।
जेहनइ दासि अछइ एहवी, ते कहु आप हुसी केहवी ॥ ३११ ॥

व्यास कहइ संभलि सुलितांरण, पदमिरिण नारि तरणां अहिनांरण।
झलकंती जारणे बीजली, कुंदरण-कंति जिसी ऊजली ॥ ३१२ ॥

अंधारइ अजूआलु करइ, देखंतां त्रिभवन मन हरइ।
परिमल कमल सरीखु तास, भूला भमर न छंडइ पास ॥ ३१३ ॥

ते आवी छांनी किम रहइ, सुरिण आलिम इम राघव कहइ।
आलिम एम कहइ सुरिण व्यास, धन्य धन्य ए सगली दासि ॥ ३१४ ॥

पदमिरिण पासि रहइं नितु जेह, निजरि निहालइ पदमिरिण देह।
किण परि निजरि हुसी पदमिणी, व्यास कहइ संभलि मुझ धरणी ॥ ३१५ ॥

उंचु दीसइ ए आवास, इहां छइ पदमिणि तणु निवास ।
रतनसेन राजा इहां रहइ, पदमिणि विरह इक खिण नवि सहइ ।। ३१६ ।।

राघव वाक्यं

कवित्तं

लखदह लहइ पल्यंग, सउडि सत लाख सुणिज्जइ ।
गालमसूरी सहस, सहस गंडूआ भणिज्जइ ।
तस ऊपरि दोवटी, मोलि दस लाखे लीधी ।
अगर कुसम पटकूल, सेजि कुंकम पुट दीधी ।
अलावदीन सुरिताण सुणि, विरह विथा खिण नवि खमइ ।
पदमिणी नारि सिणगार, करि राउ रतनसेन सेजइं रमइ ।। ३१७ ।।

चोपई

अउर न देखइ पदमिणि कोइ, जो देखइ सो गहिलु होइ (११b) ।
पदमिणि पुण्यपखे क्यु मिलइ, जिणि दीठी नारी ग्रव गलइ ।। ३१८ ।।

इम ते व्यास अनइ सुलितांण, वात करइं बे चतुर सुजांण ।

[पद्मिनी का झरोखे में आकर बैठना और बादशाह का दृष्टिपात होना]

तिणि अवसर पदमिणि चीतवइ, देखु असुर किसु इम चवइ ।। ३१९ ।।

ततरइ जंपइ दासी एक, गउख हेठि बइठु सुविवेक ।
ते देखण गोखइ गजगती, आवी बेठी पदमावती ।। ३२० ।।

जाली माहे जोवइ जिसइ, व्यासइं दीठी पदमिणि तिसइ ।
ततखिण व्यास वली वीनवइ, सांमी पदमिणि देखु हवइं ।। ३२१ ।।

रतनजडी देखु जालिका, ते माहे दीसइ बालिका ।
आलिम उंचु जोइ जिसइ, परतिख दीठी पदमिणि तिसइ ।। ३२२ ।।

अहो अहो ए कहुं पदमिणि, रंभ कहुं कइ कहुं रुखमिणी ।
नागकुमरि कइ का किंनरो, इंद्राणी आणी अपहरी ।। ३२३ ।।

एहनु रूप अनोपम एह, रूप तणी इणि लाधी रेह।
एहना एक अंगूठा जिसी, अवर नारि नहु दीसइ इसी ॥ ३२४ ॥

एहनी वात कहीजइ किसी, पदमिणि नारि हीया महि वसी।
मूर्छित चित्त हूउ पतिसाह, धरणि ढलइ वलि मेल्हइ धाह ॥ ३२५ ॥

व्यास कहइ संभलि नरराज, फोकट कांइ गमाडु लाज।
धीर धरु साहस आदरु, अवर उपाय वली को करु ॥ ३२६ ॥

रतनसेन जु पांनइ पडइ, तु ए पदमिणि हाथइं चडइ।
इम आलोची मेल्ही वात, धीरपणा विण न मिलइ घात ॥ ३२७ ॥

मौन करी सहु जीमिउ साथ, भगति घणी कीधी नरनाथ।
फल फोफल देई तंबोल, माहोमोहि कीउ रंगरोल ॥ ३२८ ॥

चोआ चंदण अगर कपूर, करि कसतूरी केसर पूर।
माहोमाहि कीया छांटणा, ऊपरि दीधा वागा घणा ॥ ३२९ ॥

परिघल दीधी पहिरामणी, भगति जुगति अति कीधी घणी।
हाथी घोडा देई घणा, संतोष्या सगला प्राहुणां ॥ ३३० ॥

[भोजन के बाद बादशाह का गढ देखना और राजा रतनसेन से कपटपूर्ण विदा मांगना]

हिव इम जंपइ आलिमसाह, माहोमाहे साही बाह।
कोट दिखाडु अव हम भणी, हम आयां हूई वेला घणी ॥ ३३१ ॥

रतनसेन नृप साथइं थयु, कोट दिखाडण लेई गयु।
विसमा जे जे हुंता ठोड, फेरि दिखायु गढ चीतोड ॥ ३३२ ॥

विषम घाट अति वांकु कोट, माहि न देखइ काइ खोट।
गोला नालि घणी ढीकली, कदही कोइ न सकइ नीकली ॥ ३३३ ॥

गढ देखंता अव सहू गलइ, इसडु कोट कदे नवि मिलइ।
हिव इम जंपइ आलिमसाह, माहोमाहे अधिक उछाह ॥ ३३४ ॥

कामकाज कहयो हम भणी, तुम्ह महिमांनी कीधी घणी।
सीख दिउ हिव ऊभा रही, आलिमसाहि कहइ गहगही ॥ ३३५ ॥

भूप भणइ आघेरा चलु, जिम अम्ह जीव हुइ अति भलु।
एम कही आघु संचरिउ, गढथी बाहरि नृप नीसरिउ (१२a) ।। ३३६ ।।

नृप मनि कोइ नही वलवेध, खुरसाणी मनि अधिकु खेध।
व्यास कहइ ए अवसर अछइ, इम म कहेज्यो न कहिउ पछइ ।। ३३७ ।।

[गढ से बाहर निकलते ही बादशाह द्वारा राजा रतनसिंह को बंदी बना लेना]

हलकारचा आलिम असवार, माहोमाहि मिल्या जूझार।
रतनसेन झालिउ ततकाल, विलली वात हूई विसराल ।। ३३८ ।।

साथि हता जे सुभट सनेह, तीयां तणु तिणि कीधु छेह।
नरपति आणिउ लसकर माहि, जाणि कि सूरिज गिलीउ राहि ।। ३३९ ।।

वेडी घालि बेसारिउ राउ, आलिम जुलम कीउ अन्याउ।
भूप हतु अति सबलु सही, अबल हूउ जव लीधु ग्रही ।। ३४० ।।

सुणी सहू गढ माहे वकी, वात तणी विणठी वांनकी।
गढ माहे हूई हलकल घणी, साहे लीधु जव गढ़धणी ।। ३४१ ।।

मिलीया सुभट दहोदिसि वली, सेना सगली गढ महि मिली।
मिलीया मांणस टोलाटोलि, सबल जड़ावी गढनी पोलि ।। ३४२ ।।

वीरभांण सुत सुभटां माहि, बइठु आवि ग्रही गजगाह।
माहोमाहि करइ आलोच, सबल हूउ गढ माहि संकोच ।। ३४३ ।।

एक कहइं जूझां गढ माहि, एक कहइ दयां राती वाह।
एक कहइं सांमी सांकडइ, जूझतां किम टांणु जुडइ ।। ३४४ ।।

एक कहई नही नायक माहि, विण नायक हतसेन कहाइ।
नायक विण सहु आल-पंपाल, पूलइ बांधु जिसु पलाल ।। ३४५ ।।

एक कहई मरवु छइ सही, मूआं गरज सरइ का नही।
सबलांसु नवि थाइ संग्राम, जिण परि तिण परि न रहइ मांम ।। ३४६ ।।

इम आलोच करइं भट सहू, मन माहे भय हूओ बहू।

[पद्मिनी देकर राजा को छुड़ा लेने के लिए बादशाह का संदेश पहुंचाना]

ततरइ आविउ इक परधांन, आलिमसाहि तणु असमांन ।। ३४७ ।।

खबरि करावी आविउ माहि, एम कहइ छइ आलिमसाहि ।
हमकु नारि दिउ पदमिणी, जिम हम छोडां तुम्हनु धणी ।। ३४८ ।।

नहीतरि प्रांणइ लेशां सही, जु तुम्ह इण परि देशु नहीं ।
जु तुम्ह देशु हम पदमिणी, तु छूटेसी गढनु धणी ।। ३४९ ।।

नहीतरि गढपति लीधु ग्रही, गढ पिण हेवइ लेशां सही ।
गढ लीधइ लीधी पदमिणी, हठीउ असिपति करसी घणी ।। ३५० ।।

मरशु सुभट सहूं ससनेह, कइ हम सीख करु तुम्हि एह ।
एम कही ऊठिउ परधांन, ततरइ बोल्या ते ससमांन ।। ३५१ ।।

वात विचारी कहशां अम्हे, तां लगि पडखु इक दिन तुम्हे ।
एम कही राखिउ परधांन, सुभट करइं आलोच समांन ।। ३५२ ।।

[गढ़वालों ने पद्मिनी देकर राजा को छुड़ा लाना स्वीकार किया]

कहु हिवइं परि कीजइ किसी, विसमी वात हुई ए इसी ।
जु ए देशां इम पदमिनी, तु पिण माम रहइ नही बिनी ।। ३५३ ।।

विण दीधइ सहु विणसइ वात, पदमिणि विणि का न मिलइ धात ।
प्रांणइ ई ए लेशइ सही, जे ईम आविउ छइ ईहां वही (१२B) ।। ३५४ ।।

प्रांणइ लेतां विणसइ घणु, न रहइ वांसइ एको त्रिणु ।
नहीतरि जाशइ इक पदमिनी, अवर विणास हुइ नहु विनी ।। ३५५ ।।

वीरभांण पिण पदमिणि दिसी, देतां होइ मन माहि खुसी ।
इणि मुझ मात तणु सोहाग, लेई दीधु दुख दुहाग ।। ३५६ ।।

तिणि कारणि देतां पदमिनी, वलि मुझ मात हुइ सामिनी ।
वीरभाण समझावी कहई, पदमिणि दीधई सगलु रहइ ।। ३५७ ।।

सगले सुभटे थापी वात, पदमिणि देशां हिव परभाति ।
इम आलोची उठया जिसइ, पदमिणि सहु सांभलीउ तिसइ ।। ३५८ ।।

[सुभटों के प्रस्ताव से पद्मिनी की मनोव्यथा का वर्णन]

पदमिणि हेव हीइ खलभली, वात वुरी मइं ए सांभली।
खंडु जीभ दहुं निज देह, पिण नवि जाउं असुरां गेह ॥ ३५९ ॥

राजा इणि परि बंधे दीउ, वांसइ ए आलोचह कीउ।
सगला सुभट हूआ सतहीण, हिव किण आगलि भाखुं दीण ॥ ३६० ॥

वखत इसु मुझ आविउ वही, सरणाई को देखुं नहीं।
हिव जगदीस करीजइ किसुं, देखुं संकट आविउ जिसु ॥ ३६१ ॥

कवित्तं

दई पोलि छिटकाइ, भरचा गढ तुरकन भाया।
अउर गई घड मंडि, साथि लसकरी सवाया।
आवत मिलीउ राउ, तब हि कीधी भुंजाई।
त्रीस - सहस जुडि गया, साथी लसकरी सवाई।
खाण खाइ ऊठिउ जब हि, पकड़ि बांह राजा लीउ।
वातां ज करत लंघाइ, पोलि रतनसेन काठु कीउ ॥ ३६२ ॥

करे कटक अल्लावदी, आइ चीतोडि विलग्गु।
वाचबंध दे छलिउ, राउ भूलु मति भग्गु।
करू मंत्र मंत्रीयां, राउ छोडावे लिज्जइ।
जूझण भला न होइ, पलटि पदमावति दिज्जइ।
तनु दहुं जीभ षंडवि मरुं, जोगिणीपुरपति न पेखसुं।
पदमिणि नारि इम उच्चरइ, अब किस सरण उवेखस्युं ॥ ३६३ ॥

[बाई सुणि इक वा (त) हुई बाजर सवारी।
पदमिणि दच्यु पतिसाह दुरंग गढ राउ उवारी।
खीमकर्ण भुजमंत्र देल्ह पदमसी बयट्ठा।
मिल्या पंच पंचार सु (भ) ट सइ बल्य न दिट्ठा।
चीतोड चोरास्या सवि जुड्या त (ं) नवि सरणा उवरूं।
(न)वि रहुं से(ज)सुलिताण की अब हुं जी ह खंडवि मरूं ॥३६४॥]*

*छपी हुई पुस्तक में पृष्ठ ५७ पर स० ३७५ वाला यह पद्य, मूल में जोड़ने के लिए लेखक ने दाहिने ओर हांसिये पर लिखा। और इसके लिए ग्रंत में 'ओली ७' लिखा जिसका मतलब पन्ने की ७वीं पंक्ति में ३६३वें पद्य के बाद यह कवित्त जोड़ने का है।

[वीर गोरां बादल के पास पद्मिनी का जाना और उनको सारी स्थिति समझाना]

चोपई

इण अवसरि हिव हूउ जेह, थिर मन करि नइ निसुणु तेह ।
तिणि पुरि गोरु रावत रहइ, खित्रवठ रीति खरी निरवहइ ।। ३६५ ।।

तसु भत्रीजु वादिल बाल, वेरी कंद तणु कुद्दाल ।
ते बेही वहु बलना धणी, बेही राउत वेही गुणी ।। ३६६ ।।

राउ थकी रीसाणा रहइं, ग्रास न कांई नृपनु ग्रहइं ।
घरे रहइं न करइं चाकरी, रतनसेनि मुंक्या परिहरी ।। ३६७ ।।

ते बेही जाता था जिसइ, गढरोहु मंडाणु तिसइ ।
रूधइ गढि नवि जाइ तेह, जातां लागइ खित्रवटि खेह ।। ३६८ ।।

तिणि कारणि ते नवि नोसरइं, खरच-वरच पोतानु करइं ।
अंग तणु न तिजइ अभिमांन, मांन विना नवि लाभइ मांन ।। ३६९ ।।

खित्री ते जे खित्रवट धरइ, अपजसथी मनमाहे डरइ ।
रूधे जातां न रहइ मांम, करइं अहोनिसी नृपनुं कांम ।। ३७० ।।

ब्युंही तीरइ अधिकु त्रेस, सांमि-धरम पालइं सविशेष ।
गढनी लाज धणी निरवहइं, इणि परि ते बे राउत रहइं ।। ३७१ ।।

हिव चिति चिंतइ इम पदमिणि, गोरा बादिल वेही गुणी ।
त्यांसुं जाइ करूं वीनती, बीजां माहि न दीसइ रती (१३a) ।। ३७२ ।।

इम आलोची पवमिणि नारि, चडि चकडोलि पहूती बारि ।
साथइ लइ सखी परिवार, आंवी गोरिलरइ दरबारि ।। ३७३ ।।

आगलि गोरु बेठु दिठु, तव तसु नयणे अमिय पयठु ।
गोरइ दीठी जब पदमिणि, तव ते हरषित हूउ गुणी ।। ३७४ ।।

गोरू सांम्हो धायो धसी, विनय करी इम बोलइ हसी ।
मात मया बहु कीधी आज, कहु पधारचा केहइ काजि ।। ३७५ ।।

आलसूआं माहि आवी गंग, पवित्र हूआ मुझ अंगण अंग ।
वलतु बोलइ इम पदमिणि, हुं आवी तुम्ह मिलवा भणी ।। ३७६ ।।

सुभटे सगले दीधी सीख, दया-धरमनी लीधी दीख।
सीख दिउ हिव तुम्हं पिण सही, जिम असुरां घरि जाउं वही ।। ३७७ ।।

सुभट सहू हूआ सतहीण, खिति पुडि खित्रवट हूई खीण।
सुभटे सगले दाखिउ दाउ, पदमिणि दे नइ लेशां राउ ।। ३७८ ।।

हिव तुम्ह सीख दिउ छउ किसी, सुभटे सगले कीधी इसी।
गोरू जंपइ सुणि मुझ मात, गढ माहे हुं केही मात्र ।। ३७९ ।।

खरच न खाआं राजा तणु, पूछइ कोइ नही मंत्रणु।
पिण मनि आरति म करु मात, भली हुसी हिव सगली वात ।। ३८० ।।

जइ तुम्हि आव्या मुझ घरि वही, तु असुरां घरि जाशु नही।
सुभट तणु ए नहीं संकेत, अस्त्री दे नइ लीजइ जेत्र ।। ३८१ ।।

वरि मरिवु सुभटांनइ भलु, जिण परि तिणि परि करिवु किलु।
अस्त्री दे नइ लीजइ राउ, सुभट न थापइं एहवु दाउ ।। ३८२ ।।

जाण्या सुभट वडा जूझार, अस्त्री दे नइ ल्यइं भरतार।
ते जीवी नइ करिशइं किसुं, जिणे काम आलोच्युं इसुं ।। ३८३ ।।

पदमिणि जंपइ गोरा सुणु, इणि घरि छाजइ ए मंत्रणु।
सिरिखइ सिरखु सगले थाइ, भीत पखे नवि चित्र लिखाइ ।। ३८४ ।।

भीति सदाई झालइ भार, त्राटी बलि नइ थाइ छार।
बीजा ऊभा मुंक्या सही, तु हुं तुझ घरि आवी वही ।। ३८५ ।।

पद्मिनी वाक्यं

कवित्तं

तुंहि ज राउ गोरिल्ल, तुंहि ज दल माहे वडु।
तुंहि ज राउ गोरिल्ल, तुंहि ज मोरा प्रियअडु।
तुंहि ज राउ गोरिल्ल, तुंहि ज दल बीडु झल्लइ।
सुणि राउत गोरिल्ल, नारि पदमावति बुल्लइ।
अवर सुहड़ सतहीण हूअ, जस लीजइ तइं एकलइ।
अल्लावदीनसुं खग्ग बलि, रतनसेन छोडावि लइ ।। ३८६ ।।

[गोरा का पद्मिनी को लेकर बादल के घर जाना]

चोपई

गोरू जंपइ सुणि मुझ माइ, गाजन हुंतु मुझ वड भाइ।
तसु सुत बादिल अति बलवंत, तेह नइं पिणि जई पूछां मंत ॥ ३८७ ॥

वेही आया बादिल दिसी, बादिल सांम्हो धायु धसी।
विनयवंत पगि करीय प्रणांम, पूछइ बादिल केंहु कांम ॥ ३८८ ॥

गोरू जंपइ बादिल सुणु, सुभटे कीधु ए मंत्रणु।
पदमिणि दे नइ लेशां राय, अवर न मंडइ कोइ उपाय ॥ ३८९ ॥

पदमिणि आवी आपां पासि, हिव तुं कासुं कहइ विमासि।
तोनइ पूछण आव्या सही, करशां वात तुहारी कही ॥ ३९० ॥

सुभट स कोई बेठा फिरी, जूझण वात न ल्यइं आदरी।
आपेंई पिण अछां उदास, राउ तणु नहीं ग्रास न वास ॥ ३९१ ॥

हिव तुं जेम कहइ तिम करां, नीछुउ देता (१३b) लाजे मरां।
आपें डीले छां दुइ जणां, आलिम आगलि लसकर घणा ॥ ३९२ ॥

किम जीपेशां कहु एकला, एकिला कदेई न हुवइं भला।
तिणि कारणि तो पूछण भणी, आविउ लेई हुं पदमिणी ॥ ३९३ ॥

पदमिणि बादिलसुं वलि भणइ, सरणइ आवी हुं तुम्ह तणइ।
राखि सकु तु राखु सही, नही तरि पाछी जाऊं वही ॥ ३९४ ॥

खंडु जीह दहुं निज देह, पिण नवि जाउं असुरां गेह।
लाखा जमहर करि नइ बलुं, पिण नवि कोट थकी नीकलुं ॥ ३९५ ॥

[पद्मिनी के सम्मुख राजा रतनसेन को छुड़ा कर लाने की बादिल की प्रतिज्ञा करना]

दूहा

इम सुणि बादिल बोलीउ, दूठ महा दुरदंत।
जाणि कि गयवर गाजीउ, अतुल बली एकंत ॥ ३९६ ॥

सुणि बाबा बादिल कहइ, सुभटांसुं कुण काम।
सुभट सहू सूए रहु, ए करस्युं हुं काम ॥ ३९७ ॥

काका थे कांइ कलकलु, अंगि म धरु ऊताप ।
तु हुं बादिल ताहरूं, सयल हरूं संताप ।। ३९८ ।।

पदमिणि आंगणि पग दीउं, पवित्र हूउ मुझ गेह ।
महलि पधारू माउली, दुख म धरू निज देहि ।। ३९९ ।।

आलिम भांजु एकलु, जु वांसइ जगदीस ।
तु हुं बादिल बहसीउ, जु आणु अवनीस ।। ४०० ।।

बीड़ु झालिउं बादिलइ, बोलइ इम बलवंति ।
आलिम गंजी आप बलि, आणु नृप एकंत ।। ४०१ ।।

सुभट सहू सूए रहु, सुभटांसु कुण काम ।
ए सगला हुं एकलु, निपट करूं निज नांम ।। ४०२ ।।

बादिल बोलइ पदमिनी, मनि म करे ऊचाट ।
तु हुं गाजन जंनमीउ, जु भंजु गज-थाट ।। ४०३ ।।

अरिदल गंजु एकलु, भंजु नृपनी भोड ।
राम काजि हणमति कोउ, तिम टालु तुझ पीड ।। ४०४ ।।

सत्ति तुहारइ सांमिणि, मली महादल मांन ।
गढ माहे आणु घरे, रतनसेन राजांन ।। ४०५ ।।

जीह सिड़ु ते जण तणी, दाखिउ जिणि ए दाउ ।
पदमिणि साटइ पालटे, आणेशां घरि राउ ।। ४०६ ।।

लूण ऊतारइ पदमिनी, बाला बादिल अंगि ।
बिरद बुलावे बादिला, इम जंपइ कणयंगि ।। ४०७ ।।

गोरू हिव अति गहगहिउ, सूरिम चडी सरीर ।
कायर पूछया कंपवइ, वीर वधारइ धीर ।। ४०८ ।।

घरे पधारू पदमिणी, आरती म करू काइ ।
बादिल बोल्या बोलडा, ते जूठा नवि थांइ ।। ४०९ ।।

[बादिल की प्रतिज्ञा सुन कर उसकी माता का संताप करना]

चोपई

पदमिणि घरे पधारी जिसइ, बादिल माता आवी तिसइ।
सुणीउ सगलु तिणि संकेत, हीया माहि न माइ हेत ।। ४०९ ।।

नयण झरइ मुंकइ नीसास, अबला दीसइ अधिक उदास।
इणि परि आवो दीठो मात, विनय करी सुत पूछइ वात ।। ४१० ।।

किणि कारणि तुं माता इसी, कहु वात मन माहे किसी।
आरति चीत किसी तुझ भणी, कांइ दीसइ आमण-दूमणी ।। ४११ ।।

मात कहइ सुणि बादिल बाल, मा'डा कांइ पडइ जंजालि।
दूध दही तुं मुझ नइ एक, तो विण काइ न बीजी टेक ।। ४१२ ।।

तुं मुझ जीवन प्राणाधार, तो विण सूनु सहि संसार।
तइं (१४a) ए कांइ कीउ मंत्रणु, वांसइ कासुं देखइ घणु ।। ४१३ ।।

सुभट घणा गढ माहि समाज, त्यां बेठां तो केही लाज।
ग्राम-वास को नही नृप तणु, आपें खरच करां आपणु ।। ४१४ ।।

घणा जिके खाइं छइं ग्रास, सुभट रह्या छइ तेइ उंदास।
तुं किणी कारणि हुइ अझलखु, बिणठी बेला का नवि लखु ।। ४१५ ।।

रणवट रीति न जाणु अजे, वात करी जाउ वजवजे।
कदी कोया छइं तइं संग्रांम, अणजांण्या किम कीजइं कांम ।। ४१६ ।।

आलिम किणि परि गंज्यु जाइ, आटइ लूण किसा नइ थाइ।
बादिल पुत्र अछइ तुं वाल, मत मुझ दुख दीइ अणगाल ।। ४१७ ।।

परणिउ अछइ अजे तुं आज, कहतां आवइ मन महि लाज।
पहिली साझु घरनी वहू, किला करेयो पाछइ बहू ।। ४१८ ।।

अजे अछइ तुं बादिल बाल, कुसमकली जिम अति सुकमाल।
म करसि वात विमास्या पखे, अति ऊछंछल थाउ रखे ।। ४१९ ।।

[बादिल का माता को उत्तर देकर शान्त करना]

बादिल जंपइ वलतुं हसी, माता वात कही तइं किसी।
किणि परि बाल कहिउ मुझ माइ, पहिली मुझनइं ते समझाइ ।। ४२० ।।

धूलि न चुंथुं रोउं हुं नही, आडा न करूं साडा ग्रही ।
थांन न चुंखुं मुखि आंपणइ, पोढुं नही कदे पालणइ ।। ४२१ ।।

कांइ कहइ तुं मुझनइ बाल, देखे जेम करूं घखचाल ।
राउ घणा उथापे थपुं, इसडइ कांमि किसुं ऊतपुं ।। ४२२ ।।

सीसि ऊडाडुं सगला सित्र, तु हुं जाणे ताहरू पुत्र ।
गाजन बाप सही गाजवुं, मत मनि जांणइ कुल लाजवुं ।। ४२३ ।।

खित्रवटि रणवटि पाछउ खिसुं, तु तुं मात कहे मुझ इसुं ।
भिडतां पाछउ पग जु दीउं, तु तुझ माता फाटु होउं ।। ४२४ ।।

खलदल खंडि करूं दहवाट, तु तुं कांइ करइ ऊचाट ।
म करसि माता मनि अणदोह, सगले आज वधारूं सोह ।। ४२५ ।।

गाजन आज करूं गाजतु, रणरस रंगि रमुं राजतु ।
सीह सिबंद सुणि गय-घड जांइ, कायर वचन कहइ मुखि कांइ ।। ४२६ ।।

कवित्तं

आइ माइ तिणि ठाइ, बइठ बादिल्ल पासि तस ।
तूय विण पुत्र निरास, तुं हि ज चालिउ जूझण कसि ।
नयण मोरू बादिल्ल, प्राण बादिल्ल भणावइ ।
वयण मोरू बादिल्ल, वारवारां समझावइ ।
आवती माइ तव पेखि करि, ऊठि बादिल सु प्रणाम कीय ।
बालक पुत्र जुगि २ जयो, कवण कुमंत्री मंत्र दीय ।। ४२७ ।।

बादिल वाक्यं

हुं कित बालु माइ, धाइ अंचलि नवि लगुं ।
हुं कित बालु माइ, रोइ भोजन नहु मगुं ।
हुं कित बालु माइ, धूलि, लिट्टुं न हु फिट्टुं ।
हुं कित बालु माइ, पाइ पालणइ न लुट्टुं ।
बालु रि माइ तइं क्युं कहिउ, अवर राइ रक्खविउ ।
सुरताण सेन विनडुं नहीं, तु तब हि माइ फट्टुहीउ ।। ४२८ ।।

माता वाक्यं

रे बाला बादिल्ल, मनह आपपु न बुझसि।
रे बाला बादिल्ल कुमर, कहि किसि मुहि जुझसि।
गढ वीटिउ चिहुं ठाइ, सूर निवसति खित्री वस।
तूभ्र विण (१४b) पुत्र निरास, तुं हि ज चलिउ जूझण कसि।
इम कहइ माइ बादिल सुणि, वयणिक मोरू चित्त धरि।
साहण समुंद्र सुलिताण दल, केम वछ अंगमि सुभर।। ४२९।।

बादिल वाक्यं

हुं कित बालु माइ, मेछ पांखां भरि खिल्लुं।
हुं कित बालु माइ, सपत पाताल हि पिल्लुं।
बालइ बासिग नाग, कांन्हि आणीउ भुजां बलि।
बालइ जाजइ सूरि, सीस जस दीध सांमि छलि।
बालइ बलालि एतु कीउ, दुरयोधन बंधवि लीउ।
सुरताण सेन विनडुं नही, तु तबहि माइ फुट्टो हीउ।। ४३०।।

[माता का बादिल की बात से संतुष्ट न होकर उसकी पत्नी को उकसाना]

चोपई

सुतनु सूरपणु संभली, माता मन महि अति खलभली।
मात वचन नहु मांनइ रती, माता माहि गई विलवती।। ४३१।।

वात सहू वहूअरनां कही, जाई राखु निज पति ग्रही।
मुझनी सीख न मांनइ तेह, रहसी नेट तुहारइ नेहि।। ४३२।।

सज्जि सिणगार सजे साबता, पहिरी वस्त्र नवा फाबता।
हाव भाव करि वचन विलास, जिण परिं तिण परि घाले पास।। ४३३।।

एम सुणी वहूअर नीकली, झलकइ कंति जिसी वीजली।
सुकलीणो सझि सोल सिंगार, आवी जिहां छइ निज भरतार।। ४३४।।

रूपइं रंभ जिसी राजती, ललित वचन बोलइ लाजती।
नयणे निरमल दाखइ नेह, सांमि धरमि साची ससनेह।। ४३५।।

कोमल कमल-वदन कामिनी, दीपइ दंत जिसा दामिनी।

[बादिल की पत्नी का पति को समझाना]

हसित वदन बोलइ हितकरी, सांमी वात सुणु माहरी ॥ ४३६ ॥

आलिम दूठ महा दुरदंत, कहि न किसी परि जूझसि कंत।
अरि बहुला नइ तुं एकलु, कहु किसी परि करिशु किलु ॥ ४३७ ॥

बादिल बोलइ सुणि कामिनी, जो ए जंग करू जामिनी।
गज बहुला नइ एक ज सीह, तु पिण नावइ तसु मनि बीह ॥ ४३८ ॥

मयगल माता मद बहु झरइं, सीह थकी किम नाठा फिरइं।
सीह सदाई सांम्हो धसइं, वाढचउ ई नवि पाछु खिसइ ॥ ४३९ ॥

सुंदरि बोलइ सांमी सुणु, खोटु म करु ए मंत्रणु।
करतां वात अछइ सोहिली, पिण ते वेला अति दोहिली ॥ ४४० ॥

बादिल बोलइ सुंदरि सुणउ, भय म दिखाडे मुझनइ घणु।
कायर वात करइ हसि हसि, वेला पडीयां जाइ खिसी ॥ ४४१ ॥

ते हुं पुरुष नही बादिलु, जो ए जिणि परि झाळुं किलु।
वलतुं वनिता बोलइ वली, कंता वात न जाइ कली ॥ ४४२ ॥

हय हीसारव गज सारसी, प्रबल करइं मुंगल पारसी।
गोला नालि वहइं ढीकली, न सकइ को पेसी नीकली ॥ ४४३ ॥

चोगडदा नितु चोकी फिरइं, शस्त्र घणा अरि अंगे धरइं।
तिहां तुं पइसिसि किम एकलु, ए आलोच नही छइ भलु ॥ ४४४ ॥

बादिल बोलइ वलतुं हसी, तइं ए वात कही मुझ किसी।
हयवर गयवर पांयक पूर, हेकरिण हाकि करूं चकचूर ॥ ४४५ ॥

लाख सतावीस लसकर लूटि, केवी सगला नांखु कूटि।
माल घणु आणुं अरि मारि, तु मुझ माता झेलिउं भार ॥ ४४६ ॥

कंता जंपइ रहि हो कंत, मुझ मन माहि न भाजइ भ्रंत।
अजे न साझी छइ ते सेज, निज नारी सुं न रमिउ हेजि (१५a) ॥ ४४७ ॥

कांम युद्ध नवि जाणइ करे, निज नारीथी नासइ डरे।
बालक जेम अजे निकलंक, देइ न जाणइ अधरे डंक ॥ ४४८ ॥

ते तुं किरिण परि जूझसि सही, वलतु बादिल बोलइ नही।
नारी जंपइ सुरिण मुझ नाथ, मुझ तनि अजे न लायु हाथ ।। ४४९ ।।

ते तुं अरिदल भंजसि केम, वलतुं बादिल जंपइ एम।

[बादिल का पत्नी को उत्तर देना और पत्नी का बादिल को उत्साह प्रदान करना]

सुरिण सुंदरि तुं म करे हेज, तिरिण दिनि आविसु तुझनी सेज ।। ४५० ।।

जिरिण दिनि जीपिसु वयरी एह, तां लगि सेज न हेज न नेह ।। ४५१ ।।

वलतुं नारि पयंपइ वली, सूरिम सगलइ तनि ऊछली।
भलइं भलइं स्वांमी स्याबासि, भवि भवि हुं छूं थारी दासि ।। ४५२ ।।

जिम बोलइ छइ तिम निरवहे, जत किरिण वातइं जाइ ढहे।
लाज म अरणावे कुलि आंपरणइ, सांमी झुंबे साहसि घरणइ ।। ४५३ ।।

नेजइ घाउ करे मुझ नाथ, देखिसु हिवइ तुहारा हाथ।
खडग प्रहार खरा चालवे, आयुध अंगि घरणा जालवे ।। ४५४ ।।

पाछा पाउ रखे रणि दीइ, मरण तणु भय मारणे होइ।
भलु भवाडे खित्री वंस, पुहवि करावे सबल प्रसंस ।। ४५५ ।।

खलदल खेत्र थकी खेसवे, आयुध अंगइं राखे सवे।
सुभटां माहि वधारे सोह, वाहे विकट छछोहा लोह ।। ४५६ ।।

नाम करे नवखंडे नाथ, वाहि सकइ तिम वाहे हाथ।
सुभट सहू कहीइं सारिखा, परगट लाभइं इम पारिखा ।। ४५७ ।।

जीवरिण मररिण तुहारु साथ, हुं नवि मुंकुं जीवन नाथ।
घणुं घणुं हिव कासुं कहूं, तेम करे जिम हुं गहगहुं ।। ४५८ ।।

भिडतां भाजी नासे मूउ, कायर कंपि हूउ जू-जूउ।
एहवा वचन सुण्या मइ कांनि, तु मुझ लाज हुसी असमांनि ।।४५९ ।।

कंत कहइ संभलि कमिनी, हवइ सही तु मुझ सामिनी।
बोल्या बोल भला तइं एह, निज कुलवटनी राखी रेह ।। ४६० ।।

अस्त्री आरिण दीया हथीयार, साझिउ सुभट तणु सिरणगार।
मिली हिली माता पग वंदि, असि चडि चालिउ बादिल भंदि ।। ४६१ ।।

[बादिल का राजसभा में पहुँच कर रतनसेन के पुत्र वीरभाण आदि से मन्त्रणा करना]

गोर रावत पूछी करी, चालिउ बादिल साहस धरी।
सुभट सहू मिलीया छइं जिहां, बादिल चालो आविउ तिहां ।। ४६२ ।।

बादिल बोलइं हंसे इसुं, कहु तुहे आलोचिउं किसुं।
सुभट कहइं वादिल संभलु, सबल मंडांणु ए कलकलु ।। ४६३ ।।

हठीउ आलिम अमली मांण, राजा साही लीधु प्रांणि।
गढ पिण हेवइं लेसी सही, जे इहां आविउ छड इम वही ।। ४६४ ।।

पदमिणि दयां तु छूटइ पास, नहीतरि गढनी केही आस।
गढि जातइ कांइ नवि रहइ, वली करां हिव ज्युं तुं कहइ ।। ४६५ ।।

बादिल बोलइ भल मंत्रणु, कीउ तुम्हे आलोचिउ घणु।
पदमिणि देशां आपें सही, पिण इक वात सुणु मुझ कही ।। ४६६ ।।

छांटु पडसी सगलइ देसि, मस्तकि कोइ न रहसी केस।
खित्रवट सहू लोपासी खरी, आ थें वात भली नादरी ।। ४६७ ।।

भाडा सुभट मरइं गहगही, पिण निज मांण न मेल्हइं सही।
मान पखे नर कहीइ किसु, कण विण ठाला कूकस जिसु ।। ४६८ ।।

काया माया बे कारिमी, घडी एक बांकी घडी एक समी।
कायर हूउ अथवा हुउ सूर, मरण किणइथी ने टलइ दूर ।। ४६९ ।।

तु ते मरण समारी मरू, ढांढा होइ किसुं ऊगरू।
पदमिणि दीधी कहीइ केम, पति राखणसुं जु छइ प्रेम ।। ४७० ।।

वीरभाण इम निसुणी भणइ, बादिल बोलिउ तुं बलि घणइ।
भाखी सहू भली तइं वात, पिण (१५b) नवि प्रीछइ तुं तिलमात्र ।। ४७१ ।।

आलिम ईसं तणु अवतार, लसकर लाख सतावीस लार।
यवनी सुभट .वडा जूझार, हणइ हेकीकु हेलि हजार ।। ४७२ ।।

साही लीधु वलि सिरदार, जूझंतां आवइ तसु भार।
काइ परि हिव पुहचइ नही, नहीतरि म्हे पिण जूझत सही ।। ४७३ ।।

बादिल बोलइ कुंअर सुणउ, ए आलोच नही आपणु।
किसा आलोच करइ केसरी, मारइ मयगल माथइ धरी ।। ४७४ ।।

इम करतां जू मूआ वली, तु पिण कीरति हुई निरमली।
काया साटइ कीरति जुडइ, तु नवि मोलइं मुंहगी पडइ ॥ ४७५ ॥

काया चांबतणी कोथली, खिण इक मेली खिण ऊजली।
तिण साटइ जु कीरति मिलइ, तु लेतां कुण पाछुं टलइ ॥ ४७६ ॥

[बादिल की बात सुनकर वीरभाण का प्रसन्न होना और बादिल का बादशाह के खेमे में जाकर उससे वार्तालाप करना]

वीरभाण हिव बोलइ वली, बादिल तुझ मति अति निरमली।
अरजुण ते जे वाजइ गाइ, करि जिम हिव तुझ आवइ दाइ ॥ ४७७ ॥

राजा छूटइ पदमिणि रहइ, इणि वातइं कुण नवि गहगहइ।
बादिल वोलइ कुंअर सुणु, करयो ऊपर वांसइं घणु ॥ ४७८ ॥

हुं जाउं छुं लसकर माहि, आवुं वात सहू अवगाहि।
करि जुहार बादिल असि चडिउ, साहसि सुरपति सांसइ पडिउ ॥ ४७९ ॥

गढनि पोलि हुई ऊतरिउ, बुद्धिवंत बहु साहसि भरिउ।
निलवटि दीपइ अधिकु नूर, प्रतपइ तेज तणु घटि पूर ॥ ४८० ॥

आयुध अंगि सहू साबता, पहिरणि वस्त्र नवा फाबता।
आवइ एकलमलं असवार, जाणे अभिनव अगनिकुमार ॥ ४८१ ॥

आलिम दीठु ते आवतु, सुभट घणुं दीसइ साबतु।
आलिम मेल्हया सांम्हा दूत, पूछउ आवइ किम रजपूत ॥ ४८२ ॥

दूते जाइ पूछिउ तेह, बोलइ बादिल अति ससनेह।
हूं आविउ छुं करवा वात, पदमिणि आणि दीउं परभाति ॥ ४८३ ॥

आलिम मांनइ मुझ मंत्रणु, तु उपगार करूं हुं घणु।
दूते जाइ धणी नइ कहिउ, इम सुणि आलिम अति गहगहिउ ॥ ४८४ ॥

माहि तेडाविउ दे बहु मांन, दीठु असिपति अति असमांन।
तेज तपइ ब्युं हो तनि घणु, आलिमसाहि दीउ वेसणु ॥ ४८५ ॥

बइठु बादिल बुद्धिनिधांन, असिपति पूछइ दे बहु मांन।
क्या तुझ नाम किणइ का पूत, अब किसका हुई तू रजपूत ॥ ४८६ ॥

क्युं अब आया हइ हम पासि, क्या हइ तुझकुं गढ महि ग्रास।
बोलइ बादिल बलतुं हसी, रोमराइ सहू घटि ऊससी ॥ ४८७ ॥

अवसरि बोली जाणइ जेह, माणस मुंहगु थाइ तेह।
तिण परि बादिल तब बोलीउ, हरखिउ जिम आलिमनु होउ ॥ ४८८ ॥

नाम-ठांम सहु निरता कह्या, माहोमाहि बिन्है गहगह्या।
बादिल बोलइ आदर करी, सांमी बात सुणु माहरी ॥ ४८९ ॥

पदमिणि मेल्हिउ हूं, परधांन, सुभट न मेल्हइं निज अभिमांन।
पदमिणि दीठो जब तुं द्रेठि, जीमंतु निज जाली हेठ ॥ ४९० ॥

तिणि दिनथी ते चिंतइ इसुं, कामदेव ए कहीइ किसुं।
धन ते नारि तणु अवतार, जेहनइ आलिम छइ भरतार ॥ ४९१ ॥

विरह वियाकुल बैठी रहइ, निसि दिन सुहिणे तुझनइं लहइ।
कर ऊपरि मुख मेल्ही रहइ, नयणे नीर घणुं तसु वहइ(१६a) ॥ ४९२ ॥

निपट घणा मेल्हइ नीसास, अबला दीसइ अधिक उदास।
तुझसुं कोइ हूउ अनुराग, रातु जाणि प्रवाली राग ॥ ४९३ ॥

पदमिणिनइ मनि अधिकु प्रेम, ते कहवाइ मइं मुखि केम।
आलिम आलिम करती रहइ, मुझसुं बात सहू ते कहइ ॥ ४९४ ॥

तुझनु आविउ सुणि परधांन, तेह प्रतइं दीधु बहु मांन।
सुभट कहइं म्हे मरशां सही, पिण म्हे पदमिणि आपां नही ॥ ४९५ ॥

समझाविउ मइं सुभट समेत, बीरभाण राजा जगजेत्र।
क्युं क्युं आज ढबइ छइ बात, तिणि जाणां छां मिलसी घात ॥ ४९६ ॥

पदमिणि मेल्हिउ हुं तुम्ह भणी, विनय भगति वीनववा घणी।
वली जिका होइ छइ वात, कहिस्युं आबी ते परभाति ॥ ४९७ ॥

सीख दिउ हिव मुझनइं सही, पदमिणि पासइ जाउं वही।
जोती होसी मुझनी वाट, करती होसी अति ऊचाट ॥ ४९८ ॥

विरह विथा न सहइ विरहणी, काम पीउ घटि चालइ घणी।
तुझ संदेश सुधारस जिसा, पाउं तुं जई सुणाउं तिसा ॥ ४९९ ॥

[बादिल की बातें सुनकर अलाउद्दीन का काम-व्याकुल होना और बादिल के कथनानुसार कार्यवाही करने को राजी होना]

दूहा

असिपति इरिण परि संभली, पदमिरिण प्रेम प्रकास ।
वयरण बारिण वीध्यु घणु, मनि मेल्हइ नीसास ।। ५०० ।।

अलजु तनि अति ऊपनु, विलली विरह वराल ।
अवसर देखी आपणु, जागिउ काम जटाल ।। ५०१ ।।

काम-बारण कुरण सहि सकइ, दाझइ सगलु देह ।
सुंदरितरणा संदेसड़ा, निपट वधारइं नेह ।। ५०२ ।।

विरह-विथा सहि नवि सकइ, अलजु अंगि न माइ ।
प्रेम सुरणी पदमिरिण तणु, घट गलहल ज्युं जाइ ।। ५०३ ।।

असिपति थु अहि सारिखु, साहि न सकतु कोइ ।
खीलिउ बादिल गारुडी, पदमिरिण प्रेम परोइ ।। ५०४ ।।

चोपई

बोलइ असिपति बादिल सुणु, तु अम्ह आज घरे प्रांहुणु ।
भगति जुगति तुझ केही करां, तइं दीठइ मन माहे ठरां ।। ५०५ ।।

पदमिरिणसुं हम करयो प्रीति, रूडी परि सहु भाखे रीति ।
जइ हम हाथि चढी पदमिरणी, तु मुझ घरि तुं होइसि धरणी ।। ५०६ ।।

सुभट सहू समझावे घणु, थिर करि थापे ए मंत्रणुं ।
दूधड़ांग दिखलावे घरणी, बात विहांरणइ आवे वरणी ।। ५०७ ।।

एम कही निज करसुं साहि, पहिराविउ बादिल पतिसाहि ।
लाख सुनईया दीधा सार, हयवर गयवर वस्त्र अपार ।। ५०८ ।।

[बादिल का बादशाह से सम्मान पाकर खेमे से किले में लौटना और आगे की तैयारी करना]

ते लेई बादिल आवीउ, हरषिउ माइ तणु तब हीउ ।
निज नारी रुलीयाइत थई, दिन आजूणू दीधू दई ।। ५०९ ।।

गोरू रावत मनि गहगहिउ, करसी बादिल सगलु कहिउ।
हरषित नारि हूई पदमिणी, उ मेलेसी सही मुझ धणी ।। ५१० ।।

सुभट सहू संक्या मन माहि, बादिल अंगइ अधिको आहि।
सिगति न छांनी राखी रहइ, बांधी अगनि हुइ तोई दहइ ।। ५११ ।।

बादिल बइसि कीउ मंत्रणु, कहुं बात ते सगला सुणु।
बि-सहस रुज्ज करु पालखी, बात न जाणइ जिम को लखो ।। ५१२ ।।

ऊपरि अधिक घरु उछाड, पागथीयां बंधु पटवाडि।
दुइ दुइ सुभट रहु त्यां माहि, सहि संजूह घटे संबाहि ।। ५१३ ।।

साचा शस्त्र घणा आदरी, बइसु मन महि साहस धरी।
लारो-लारि करु पालखी, कहिस्यां मांहे छइ तसु (१६b) सखी ।। ५१४ ।।

विचि पालखी पदमिणि तणी, परठी सोभ करु तिणि घणी।
साचउ पदमिणि तणु सिंगार, ऊपरि थापु भमर गुंजार ।। ५१५ ।।

तिण महि गोरू रावत रहु, बात रखे को बाहरि कहु।
इक प्रतिबिंबु पदमिणि माहि, आलिम न सकइ जिम अवगाहि ।। ५१६ ।।

छेकी विचइं न राखु छती, लारोलारि करु लागती।
गढनी पोलि लिगावु लार, सेन समीपइ आणु पार ।। ५१७ ।।

एम करी हिव तुम्हि आवंयो, वेला बहुली पडखावयो।
हुं विचि जाइ करेशु बात, मेलिसु सगली धातइ घात ।। ५१८ ।।

हुं जाई आणिसु राजान, पुहचाडेशां नृप निज थांन।
पछइ करेशां सबलु किलु, ए आलोच अछइ अति भलु ।। ५१९ ।।

सगले सुभटे थापी बात, परठु करतां हूउ प्रभात।
सीख सहू समझावी करी, चालिउ बादिल चंचलि चडी ।। ५२० ।।

[किले पर तैयारी करवा कर सुबह बादिल का वापस बादशाह के पास पहुँचना]

पहुतु तिमई ज लसकर माहि, जिहां बइठो छइ आलिमसाहि।
जाहु बादिलि कीउ सिलाम, हरषित हूउ असिपति तांम ।। ५२१ ।।

बादिल साचा कहि संदेस, दिउं घणा जिम तुझनइ देस।
बादिल वात कहइ परगडी, सांमी वात सिराडइ चडी ।। ५२२ ।।

सुभट सहू समझाव्या नीठ, पदमिणि आणी गढनइ पीठ।
सुभट सहू भाखइं छइ एम, निसुणु सांमी वीनति तेम ।। ५२३ ।।

पदमिणिसुं जु छइ तुम्ह कांम, तु हिव राखु मांमइं माम।
ऊपाउ अम्हनि वेसास, पदमिणि आणां जिम तुझ पासि ।। ५२४ ।।

असिपति बोलइ वलतुं एम, कहु वेसास हुइ तुम्ह केम।
बादिल बोलइ साहिब सुणु, चलवू लसकर सहु तुम्ह तणु ।। ५२५ ।।

जु वलि बीहु तु असवार, तीरइं राखु सहस बि-च्यार।
अवर सहू आघा चालवु, जिम वेसास हुइ अभिनवु ।। ५२६ ।।

एम सुणीनइ ऊतावशु, बोलइ आलिम अति बावलु।
हमे हिवइं बीहां किण थकी, बादिल बात भली तइं बकी ।। ५२७ ।।

हुकम कीउ असिपति हुसीयार, कूच करायु लसकर सार।
सहस बो-च्यारि रहु हम पास, हिंदुआंना जिम हुइ वेसास ।। ५२८ ।।

लसकरीए जब लाधु दूअ, हरष घणु मन माहे हूउ।
लसकर कूच कीउ ततकाल, चाल्या सुभट सहू समकाल ।। ५२९ ।।

साऊ-साऊ सहस बि-च्यार, असिपति पासि रह्या असवार।
बोलइ आलिम बादिल सुणु, कहिउ कीउ हइ हमि तुम्ह तणु ।। ५३० ।।

वेगि अणावु हिंव पदमिणी, पालु वाचा आपांपणी।
लाख सुनईया वलि तसु दीया, पहिराव्या वलि वागा दिया ।। ५३१ ।।

[बादशाह की सेना को दूर हटवा कर बादिल का किले पर लौटना]

ते लेई बादिल आवीउ, हरषिउ माइ तणु वलि हीउ।
निज सुभटांसुं कीउ संकेत, हिव जगदीसइं दीधु जेत्र ।। ५३२ ।।

ले पालंखी तुम्हि आवयो, लारोलारि खरी राखयो।
मत किणि वातइं हुउ आखता, खित्रवट काइ न आंणिसु खता ।। ५३३ ।।

एम कही आघु संचरिउ, पालखीए पूठि परिवरिउ।
दीठउ असिपति आविउ वली, बादिल वात कहइ निरमली (१७८) ।। ५३४ ।।

साहिब सांभलि मुझ वीनती, पदमिणि एम कहइ हितवती।
हुं आवी हिव सही तुम्ह गेह, साहिब हिव तुं हुए ससनेह ।। ५३५ ।।

साचु राखे मुझ सोहाग, मागुं मान-मुहतसुं राग।
तुझ घरि हरम हजारां गमे, त्यांसु पिण तुं रंगइ रमे ।। ५३६ ।।

पिणि सोहागिणी मुझनइं करे, जु आणइ छइ पदमिणि घरे।
एम सुणी वलि आलिम कहइ, पदमिणि आफे आदर लहइ ।। ५३७ ।।

पदमिणि नारि तणु नख एक, ते सम नावइ नारि अनेक।
पदमिणि कारणि मइं हठ कीउ, वाच लोपि राजा ग्रहि लीउ ।। ५३८ ।।

मुझ मनि खांति अछइ अति घणी, सांमिणी होसी मुझ पदमिणी ।। ५३९ ।।

अवर हरम सहु करसी सेव, पदमिणि जई पधरावु हेव।
एम कही वलि बादिल भणी, परिघल दीधी पहिरामणी ।। ५४० ।।

[बादिल का बादशाह से वार्तालाप करके वापस आना और पालखी-स्थित सुभटों को संकेत करना]

ते लेवी बादिल आवीउ, हरषिउ माइ तणु वलि हीउ।
सुभटां सुं वलि भाषी वात, जई मेलुं छुं धातइं धात ।। ५४१ ।।

तुम्ह सहू थाहरि रहयो इहां, वात रखे को काढु किहां।
आविउ बादिल वलि असि चडी, नव-नव वात कहइ मनि घडी ।। ५४२ ।।

होठे बुद्धि वसइ जेहनइं, किसुं दुहेलुं छइ तेहनइं।
वातां करतां लावड वार, फिरीउ बादिल वार बि-च्यार ।। ५४३ ।।

बोलबंध सहि साचा कीया, लाख बि-च्यार सुनईया लीया।
असिपति अति ऊतावली करइ, बादिल तिम-तिम मन महि ठरइ ।। ५४४ ।।

परगट आणि, धरी पालखी, आलिम देखइ सहु सारिखो।
बादिल वलि-वलि विच महि फिरइ, पदमिणिनइ मिसि वातां करइ ।। ५४५ ।।

रहिउ पुहर दिन इक पाछिलु, लसकर आघु गु आगिलु।
किला तणी हिव वेला थई, तव वलि बादिल बोलइ जइ ।। ५४६ ।।

सांमी एम कहइ पदमिणी, मुझ ऊभां हुई वेला घणी।
मुझनी एक सुणु अरदास, ज्युं हुं आवुं तुझ आवास ।। ५४७ ।।

रतनसेन मेलु इकवार, ज्युं मुझ अधिक रहइ आचार।
आलिम बोलइ सुणि बादिला, पदमिणि बोल कहावइ भला ।। ५४८ ।।

इणि बोलइं हम हूआ खुसी, पदमिणि न्याइ कहीजइ इसी।
[बादिल का रतनसेन को कैदखाने से बाहर निकलवाना और उसको पूरी स्थिति समझाना]
हुकम कीउ आलिम ततकाल, छोडु रतनसेन भूपाल ।। ५४९ ।।

बादिल माहि छोड़ावण गयु, राजा रूसि अपूठु थयु।
फिट रे ! बादिल मुह मम दिखालि, सबल लिगाडी तइ मुझ गालि ।। ५५० ।।

वइरी वयर घणु तइं कीउ, पदमिणि साटइ मुझ नइ लीउ।
खित्रवट माथइ घाली खेह, नीसत सुभट हूआ निसनेह ।। ५५१ ।।

बादिल बोलइ सांमी सुणु, अवर कीउ छइ ए मंत्रणु।
मुष्टि करी नइ आघा चलु, भागि तुहारइ होसी भलु ।। ५५२ ।।

कवित्तं

कीउ कूड बादिल्ल, लेइ पालिखी पहुत्तु।
तसु महि रखिउ बाल, नाम पदमिणी दियंतु।
हूउ हरष सुरतांण, जबहि सुणी आवत नारी।
गोरी तब पूछीउ, बोल बोलइ विचारी।
अल्लावदीन सु(१७b)णि बीनती, एक बात मोरी कलइ।
पदमिणि नारि इम उच्चरइ, एक बार राजा मिलइ ।। ५५३ ।।
बादिल तहां आवीउ, राउ जिहां बंधणि बद्धु।
ले मस्तक आपणु, चलण ऊपरि तसु दिद्धु।
हूउ कोप राजान, बइर तइ सारिउ वरी।
एह दईत लोभीउ, नारि कांई आणी मेरी।
बादिल्ल तांम मन महि हसिउ, कृपा करू सांमी सही।
बालक रूपि पदमावती, राउ नारि तोरी नही ।। ५५४ ।।

चोपई

प्रीछिउ भूप चलिउ ततकाल, आलिम बोलइ इम असराल।
पदमिणि नइं मिलि आवु जाइ, जिम तुझ सीख दिउ सदभाइ ॥ ५५५ ॥

राजा चालिउ पदमिणि भणी, सिबका श्रेणि घणी सांघिणी।
राजा पेठु महि पालिखी, वात सहू तव साची लखी ॥ ५५६ ॥

बादिल बोलइ सांमी सुणु, अवसर नही ए वातां तणु।
एक थकी बीजी अवगाहि, गढ लगि जाउ सिबिका माहि ॥ ५५७ ॥

सांमी थाउ हीइ सचेत, माहि जइ करयो संकेत।
साचु करयो ए सहिनांण, वाजावेयो ढोल नीसांण ॥ ५५८ ॥

[रतनसेन का पालकी में गुप्त रूप से बैठ कर किले पर पहुँचना और वहाँ से अपने सुभटों को संकेत देना]

एम सुणी राजा रंजीउ, हरष संपूरित हूउ हीउ।
कुसले खेमे पुहतु माहि, जाणि कि सूरिज मुंकिउ राहि ॥ ५५९ ॥

कुसल तणा वाजा वाजीया, तव ते सुभट सहू गाजीया।
नीकलीया नवहत्था जोध, वड दूसासण वहइं विरोध ॥ ५६० ॥

सांमि कांमि समरथ अति सूर, गोरू रावत अति हि गरूर।
अरिदल देखी अति ऊससइं, सुभट सहू मन मांहे हसइं ॥ ५६१ ॥

सूरिम सगलइ तनि ऊछली, सोहइ सुभट तणी मंडली।
साचा पहिरचा घटे सनाह, रूकहथा दीसइं रमिराह ॥ ५६२ ॥

[पालकियों में से सुभटों का निकल कर बादशाह को ललकारना और सेना पर टूट पड़ना]

च्यारि सहस नीसरीया सूर, एक इकहथी अधिकु कूर।
आगलि गोरू बादिल बेउ, पूठई चाल्या सुभट सबेउ ॥ ५६३ ॥

गाघरटइ दीसइं भट घणा, पार न लाभइ पुरुषां तणा।
त्रुटे धाया ले तरवारि, हलकारे लागा हलकार ॥ ५६४ ॥

रे रे आलिम ऊभु रहे, हिव नासी मत जाइ वहे।
पदमिणि आंणीछइ अम्हि जिका, तोनइं हिवइं दिखाडां तिका ।। ५६५ ।।

तोनइ खांति अछइ अति घणी, अम्ह ऊभां ते देवातणी।
हठीउ छइ तु करि हथीयार, हिव आलिम मनि हू हूसीयार ।। ५६६ ।।

एम कही नइं आव्या जिसइ, दोठा आलिम अरोयण तिसइ।
रणरसोउ ऊठिउ रमिराह, विणठी वात कहइ पतिसाह ।। ५६७ ।।

रे रे कूड कीउ बादिलइ, आवु सुभट सहू हिव किलइ।
हलकारचा असिपति निज जोध, धाया कलली करता क्रोध ।। ५६८ ।।

माहोमाहि मंडाणु किलु, बरवी बोलइ इम बादिलु।
पातिसाह मत छंडइ पाउ, जु तुं अधिक अछइ रणराउ ।। ५६९ ।।

तुं आयु ढोलीथी घसी, हिव मत जाइ पाछु खिसो।
सूर अछइ तु करि संग्राम, नहीतरि रहसी नही तुझ मांम(१८०) ।। ५७० ।।

आलिमना चडीया असवार, जिमदल सिरिखा जोध जुझार।
भिडइं भली परि भारथ भीम, सुभट न चांपइं पाछी सीम ।। ५७१ ।।

धसमस धूलि विघुंसइ धरा, माहोमाहि भिडइ आकरा।
खेहाडंबर ऊडिउ खरू, सूझइ सूर नही पाधरू ।। ५७२ ।।

बांण बिछूटइं बिहुं दिसि घणा, वाजइं लोह घणां सांधिणां।
खडग बिछूटइं करता खीज, जाणि कि बादलि झबकइ वाज ।। ५७३ ।।

सन्नाहे त्रूटइं तरवारि, तिणगा ऊडइ अधिक अपार।
अगनि झाल झलकइ असिधार, घन जिम हूउ घोरंधार ।। ५७४ ।।

खलक्या खलहल लोही खाल, पावसि जेम वहइं परनालि।
रज रुंधाणी थयु प्रगास, गिरझिणि मंस तणु ल्यइं ग्रास ।। ५७५ ।।

पूरइ पात्र रुहिर जोगिणी, रुंडमाल ल्यइ ईसर घणी।
झडवड झडप भरइं सीचाण, अंबरि जोवइं अमर विमाण ।। ५७६ ।।

सूरिज निज रथ खंची रहइ, रगति विगति नवि काइ लहइ।
इण अवसरि गोरू गजगाहि, धाई आविउ जिहां पतिसाह ।। ५७७ ।।

मेल्हइं खडग महाबल जिसइ, असपति अलगु नाठु तिसइ।
बोलइ बादिल बे-कर जोडि, नासंतांरी न करु कोडि ।। ५७८ ।।

[रतनसेन का किले पर से युद्ध देखना और पद्मिनी का बादिल को आशिष देना]

रतनसेन राजा अति भलु, गढ ऊपरथी देखइ किलु।
जोइ बादिल गोरा तणा, हाथ महाबल अरिगंजणा ।। ५७९ ।।

पदमिणि ऊभी दयइ आसीस, जीवे बादिल कोडि बरीस।
धन्य धन्य बलिहारइ तूझ, तइं मुझ राखिउं सगलुं गूझ ।। ५८० ।।

सुभट घणा छइं ऊभा एह, ते सगला नीसत निसनेह।
बादिल एक महाबल सहो, सत्त थकी जे चूकु नही ।। ५८१ ।।

सामिधरमि साचु ससनेह, राखी बादलि रणवट रेह।
गोरू रावत रणमहि रहिउ, आलिमासेन सहू लहु बहिउ ।। ५८२ ।।

लूटीं लीधुं लसकर सहू, के नाठा के मारया बहू।
इणि परि अरियण सहू एकलइ, बहसि करे जीता बादिलइ ।। ५८३ ।।

पातिसाह साही मुंकीउ, इक वलि मोटु ए जस लीउ।
साहि कहइ संभलि बादिला, किया पवाडा तइं अति भला ।। ५८४ ।।

जीवीतदांन दीउ मुझ भणी, किसी करां हिव कीरति घणी।
आलिमसाहि गयु एकलु, गोरइ बादलि जीतु किलु ।। ५८५ ।।

कवित्तं

बादिल तहां ले चलिउ, राव अरि राव बत्रीसह।
खडग काढि सनमुख, भिडिउ सुरतांण सरीसह।
करि पारसी मुगल्ल, तेण तहां कूड कमायु।
लंका मणि उद्धसिउ, तुरत अर तुरत सवायु।
हाइ-हाइ करंता ऊठीया, बादिल तहां सइं मुह सरिउ।
जब लगइ जूझ दल बिहुं हूउ, तब लगि हयवर पाखरिउ ।।५८६।।

[रतनसेन का किले पर से युद्ध देखना और पद्मिनी का बादिल को आशिष देना]

चोपई

जय-जयकार हूउ जस लीध, करणी बादिल अधिकी कीध।
ऊघडीया गढना बारणा, बिरद हूआ बादिलनइं घणा ॥ ५८७ ॥

राजा सांम्हो आविउ रंगि, मिलीया वेही अंगो-अंगि।
महामहोछवि माहे लीउ, अरध देस बादिलनइ दीउ ॥ ५८८ ॥

पदमणि बली पयंपइ एम, न करइ बादिल को तो जेम।
तइं दीधु मुझ नइं अहिवात, सीतल कीधा तइं मुझ गात्र ॥ ५८९ ॥

धन्य-धन्य तो माता सार, तूझ तणु जिणि झेलिउ भार।
धन्य-धन्य ते नारी सार, जेहनइ बादिल छइ भरतार ॥ ५९० ॥

मस्तकि तिलक करी सुविसाल, वद्धावइ मोती भरि थाल।
निज भाई करि थाप्यु तेह, पुहचाडिउ बादिल निज गेह ॥ ५९१ ॥

चुहटा माहि चिहुं पाखती, देखण नारि मिली आखती।
ठोडि-ठोडि मोती ऊछलइं, सगा सणीजा आवी मिलइ ॥ ५९२ ॥

इणि परि आविउ महल मझारि, वइरी-वरग घणा संघारि।
जाइ लागु मातानइ पाइ, माता दचइ आसीस सुभाइ ॥ ५९३ ॥

निज नारी ओढी नव घाट, लांबु तांणी तिलक ललाटि।
अरघ आभोखु लेई करी, थाल भरी सांम्ही संचरी ॥ ५९४ ॥

कीधा विविध वधावा घणा, कुसले खेमे आव्या तणा।

[गोरा वीर की पत्नी का बादिल से अपने पति की वीरता की बात पूछना]

हिव गोरानी अस्त्री कहइ, काकु केम रणंगणि रहइ ॥ ५९५ ॥

कहु किसो परि वाहचा हाथ, किम संघारिउ शत्रु-संघाथ।
बादिल बोलइ माता सुणु, किसु वखाण करूं ते तणु ॥ ५९६ ॥

गोरइ दाहचा गयवर घणा, पार न पामुं सुभटां तणा।
आलिमसाहि कीउ एकलु, इण परि गोरइ कीउ किलु ॥ ५९७ ॥

तिल तिल छेदी तनु आपणु, अमरपुरी पुहतु प्रांहुणु।
कुल अजू आलिउ गोरइ आज, सुभटां तणी उवारी लाज।। ५९८।।

कुंडलिया कवित्तं

गोरिल त्रीय इम उच्चरइ, सुणि बादिल ससमत्थ।
मो प्रिय रण महि जूझतइ, काहि किम वाहचा हत्थ।
कहि (किम वाहचा हत्थ) बत्थ दे सुहड पछाडिउ।
भांजीउ गयघड थट्ट पाउ दे सीस विभाड़िउ।
सुहड सूर संहारि, जेण बहु कीधी घोरिल।
बादिल कहि सुणि मात, रणहि इम पडिउ गोरिल।। ५९९।।

[गोरा की पत्नी का सती होना]

चोपई

एम सुणी नइ अस्त्री तेह, विकसित वदन हूइ ससनेह।
रोमि-रोमि सूरिम उछली, मुलकी महिला बोलइ वली।। ६००।।

संभलि बेटा हिव बादिला, ठाकुर दो'रा व्हइं एकला।
पछइ विचइं छेटी हुइ घणी, रीस करेसी मुझनइ धणी।। ६०१।।

विहलु हू, हिव वार (म) लाइ, काकीनइ पुहचाडु ठाइ।
एम सुणी बादिल हरषीउ, धन्य-धन्य माता तुझ हीउ।। ६०२।।

घणु वित्त ते विहजी करी, करि सिंगार चढि तीखइं तुरी।
जय जय राम करी नीसरी, अगनि-सनांन कीउ सुंदरी।। ६०३।।

पति पासइ जई पुहती जिसइ, अरधासण दोउ इंद्रइं तिसइं।
अमरपुरी पुहूता अवगाहि, जय-जयकार हूउ जग माहि।। ६०४।।

बिरद बुलावइ बादिल घणां, सांमिधरम सतवंतां तणा।
इसु न कोई हूउ सूर, त्रिहुं भवणे कीधु जस पूर।। ६०५।।

पदमिणि राखी राजा लीउ, गढनु भार घणु झालीउ।
रण(१६०)वट करि नइ राखी रेह, नमो-नमो बादिल गुण-गेह।। ६०६।।

[कवि का उपसंहारात्मक कथन]

कवित्त

जय बादिल जय पत्ति, बिरद बादिल अरि-गंजण ।
संकट सांमि सनाह, ते जनाडउ गय-बंधण ।
मालिउ गयंदां माण, हण्या हत्थी मय-मत्तह ।
आणिउ मोरु कंत तुहि ज दीधु अहिवत्तह ।
पदमिणी नारि इम उच्चरइ, तुम्ह सरिसु नहु अवर हुय ।
आरती ऊतारहि वर तरुणि, जय बादिल जय पत्ति तूय ।। ६०७ ।।

करि प्रपंच बादिल्ल, नारि ऊगारी बलि छलि ।
साहि न सकिउ सुरितांणि काजि जस एह भुजां बलि ।
मलिउ गयंदां माण, सांमि आणिय ऊवेलीउ ।
भंजि ढाल पाडिय सिलार, मलिकां दल मेलीउ ।
इम सुण(वि माय आ)णंद कीउ, पुत्रइं पर-दल पेलीउ ।
उच्चरी वात बादिल्ल की, पदमिणि कंत ऊवेलीउ ।। ६०८ ।।

*

[कवि हेमरतन का रचना के समय और स्थान आदि विषयक परिचय देना]

चोपई

बादिल राउतनी ए कथा, सुणतां नावइ निज घटि विथा ।
रोग सोग दुख दोहग टलइ, मनना सयल मनोरथ फलइ ।। ६०९ ।।

पूनिमगछि गिरूआ गणधार, देवतिलक सूरीसर सार ।
न्यानतिलक सूरीसर तास, प्रतपइं पाटइ बुद्धिनिवास ।। ६१० ।।

पदमराज वाचक परधांन, पुहवो परगट बुद्धि-निधान ।
तास सीस सेवक इम भणइ, हेमरतन मनि हरषइ घणइ ।। ६११ ।।

संवत सोलइ-सइं पणयाल, श्रावण सुदि पंचमि सुविसाल ।
पुहवी पीठि घणु परगडी, सबल पुरी सोहइ सादडी ।। ६१२ ।।

पृथवी परगट रांण प्रताप, प्रतपइ दिन-दिन अधिक प्रताप।
तस मंत्रीसर बुद्धिनिधांन, कावेडचां कुलि तिलक समांन ।। ६१३ ।।

सांमिधरमि धुरि भांमुसाह, वयरी-वंस विधुंसण राह।
तस लघु भाई ताराचंद, अवनि जाणि अवतरीउ इंद्र ।। ६१४ ।।

ध्रूय जिम अविचल पालइ धरा, शत्रु सहू कीधा पाधरा।
तसु आदेस लही सुभ भाइ, सभा सहित पांमी सुपसाइ ।। ६१५ ।।

वात रची ए बादिल तणी, सांमिधरमि अति सोहामणी।
वीररस सिणगार विशेष, रस बे सरस अछइ सविसेष ।। ६१६ ।।

सुणतां सवि सुख संपद मिलइ, भणतां भावठि दूरइं टलइ।
ऊजम अंगि हुइ अति घणु, मुहकम जाणइ करि मंत्रणु ।। ६१७ ।।

षट सित षोडस गाथा बंधि, सुणिउ तिसु भाष्यु संबंध।
अधिक ऊन जे हुइ उच्चरिउं, सयण सुणी ते करयो खरुं ।। ६१८ ।।

सांमिधरम पालंतां सदा, सगली आबइ घरि संपदा।
सुर नर सहू प्रसंसा करइं, बरमाला लै लिखमी वरइ ।। ६१९ ।।

इति श्री गोराबादिल-चरित्रे । बादिल-जयलक्ष्मी-वर्णनो नाम प्रथमः खंडः ।। संवत् १६४६ वर्षे मगशिर सुदि १५ दिने श्री सादडी मध्ये । वा० हेमरत्नेन लिखितं ।। श्रीरस्तु ।। कल्याणं भूयात् ।। मंगलाभ्युदयोस्तु ।। (१९ b.)